योगी का आत्म-चरित्र

(३९ वर्ष की अज्ञात जीवनी)

संस्कृत में प्रवक्ता

योगेश्वर महर्षि दयानन्द सरस्वती

संस्कृत से बंगला में कराने वाले

महर्षि देवेद्रनाथ ठाकुर, पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, श्री ब्रह्मानन्द, श्री केशव चन्द्रसेन
आदि बंगाल के मूर्धन्य विद्वद्वृन्द

बंगाल में लेखक

संस्कृत-बंगला-विशेषज्ञ मण्डल

हिन्दी अनुवादक तथा हस्त लेख अन्वेषक

श्री पं० दीनबन्धु शास्त्री बी० ए० आचार्य

गवेषक पोषक तथा ऋषि यात्रा-यात्री

श्री स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती योगी

अध्यक्ष श्री नारायण स्वामी आश्रम, नैनीताल

सा० मन्त्री सार्वदेशिक आर्यसन्यासी वानप्रस्थ मण्डल-ज्वालापुर

महामहिम-पातञ्जल योग साधना संघ

प्रकाशक

पातञ्जल योग साधना संघ

वैदिक भक्ति साधना आश्रम,

रोहतक

मूल्य १५·००

प्रकाशक, गवेषक, अनुवादक का समस्त लाभांश महामहिम के आदेशानुसार
योग साहित्य प्रकाशन एवं योग प्रसार में व्यय होता है

वितरक

१. प्रकाशक वैदिक साधना आश्रम, आर्य नगर, रोहतक,
२. श्री कल्याण स्वरूप जी साधक
आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर, सहारनपुर
३. श्री बालकृष्ण जी अग्रवाल, यौगिक संघ,
११ नं० पोलक स्ट्रीट, कलकत्ता-१
४. रोशन बुक डिपो, नई सड़क, देहली,
५. श्रीमती प्रतिभा किशोर, १३६ डी०
कमला नगर, देहली-७
६. गुरु विरजानन्द स्मारकन्यास, करतारपुर, पंजाब ।

मुद्रक :
अशोक प्रेस,
नई सड़क, दिल्ली-६

मेरे परम मित्र पंण्डित प्रवर ईवरचन्द्र विद्यासागर का अनुरोध

"योग की साधना के बारे में आपके अनुभव
में जो कुछ भी है, आप करीब-करीब
सब कुछ ही बोलने की कृपा करें।
क्योंकि किताबों में ज्ञान का
रहस्य मिलता है, साधना का
रहस्य नहीं मिलता है।"

—**ईश्वर चन्द्र विद्यासागर**

"विद्या सागर जी का अनुरोध मुझे सहर्ष
स्वीकार है। मैं यथा शक्ति इसका
वर्णन करूंगा।"

—योगेश्वर महर्षि दयानन्द

(योगी का आत्म-चरित्र पृ० १३५)

ऋषि ने समस्त भारत का भ्रमण किया

"मैं एक बार गंगोत्री से चलकर गंगा सागर तक और एक बार गंगोत्री से रामेश्वर तक गया था। रात्रि में जब तेल न रहता था, तो मैं बाजार के दीपकों के प्रकाश में पढ़ा करता था। मैं कई दिन तक लगातार मध्याह्न में तप्त रेणु में पड़ा रहा हूँ, और हिमाच्छादित पर्वतों में तथा गंगा तट पर नग्न और निराहार सोया हूँ।"

—देवेन्द्र बाबू का महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र पृष्ठ ६२२

"शिवजी महाराज कैलाश निवासी थे तथा कुबेर अलकापुरी के रहने वाले थे। काश्मीर से नेपाल तक सब देश मेरा देखा हुआ है। मैं इन सब ओर मैं घूमा हुआ हूं।"

—महर्षि दयानन्द का पूना प्रवचन (दशम व्याख्यान)

"मेरे जीवन काल में यह आत्म-चरित्र न छापा जाए"

योगी का आत्म-चरित्र पृ० २४१

—महर्षि का बंगाली विद्वानों को आदेश

शीर्षक सूची

अनुसंधान

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पञ्चम अध्याय

षष्ठ अध्याय

सप्तम अध्याय

पाठकों से . . .

योगी ही ब्रह्म से सीधी बात करता है, वही ऋषि होता है, और वही वेदार्थ को जान या जना सकता है। सब शास्त्रों की योग-प्रक्रिया एक ही है, उससे भिन्न कोई मार्ग योग का नहीं माना जा सकता। शास्त्रों की इस प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिये प्रस्तुत ग्रन्थ में वेद, उपनिषद्, दर्शन, पुराण व गीता के उद्धरण दे दिये गये हैं। यही प्रक्रिया इस 'आत्म-चरित्र' में भी दर्शायी गयी है।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि भी योगी थे। वे ब्रह्म का अवतार किस रूप में हैं और क्यों हैं यह पूर्वार्द्ध (अनुसंधान) के आरंभ में दर्शाया गया है। महर्षि दयानन्द का योग सिद्ध था, वे उच्च कोटि के तीसरी श्रेणी के योगी थे—'भूतजयी योगी'। उनका हर कार्य ईश्वर-प्रेरणा से नियन्त्रित होता था। संसार के प्रवाह को दयानन्द रूपी प्रपात से अधिक गतिशील बनाना भगवान् का लक्ष्य प्रतीत होता है। इसलिए, सन् सत्तावन की क्रांति के नेता महर्षि दयानन्द के शिष्य बने और भारत स्वतन्त्रता की ओर अग्रसर हुआ।

प्रस्तुत 'आत्म-चरित्र' की कोई घटना, कोई स्थान, कोई समय अप्रामाणिक नहीं है। इसकी पुष्टि में भूगोल, इतिहास, ऋषि की उपलब्ध जीवनियों, स्वकथित आत्म-चरित्र एवं पत्र व्यवहार से 'पूर्वार्द्ध' में और परिशिष्ट में प्रमाण जुटाए गये हैं। अन्त में, जीवनी सम्बन्धी पूना-प्रवचन तथा 'थ्योसौफ़िस्ट' की दुष्प्राप्य ऋषि जीवनी प्रामाणिक अनुवाद सहित अंग्रेजी में इसी लिए दिये गये हैं कि इन तीनों आत्म-चरित्रों में एक दूसरे की व्याख्या ही है, समानता है विरोध नहीं।

बिना समझे खण्डन करने वालों को सद्बुद्धि देती हुई यह जीवनी मार्गदर्शक बनेगी, ऐसी आशा है। प्रकाशन की शीघ्रता में छपाई की कई प्रकार की त्रुटियां रह गई हैं जिस में प्रूफ रीडिंग की भी हैं, जैसे पृ० ७८ पर 'वैशेषिक' का 'वैशेयोग' हो छप गया है। ये सभी अगले संस्करण में ठीक हो सकेंगी। ग्रन्थ का कलेवर एवं साजसज्जा और तदनुरूप मूल्य भी संभावना से अधिक रखना पड़ा है। किन्तु, एक शोध-पुस्तक मूल्यवान् होती ही है।

सूची की कुछ अशुद्धियां कृपया ठीक करलें :—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	५-६	हादम १४-१५ अनुसंधान निष्कर्ष १६	हार्दम् १५-१६.
,,	७	योगावतण १-६१	योगावतरण १७-६१.
,,	२६	६२-११४	६२-१२५.
६	२०	१२३-१२८	१२६-१३२.
,,	३२	१४२,	१४३, योगी के आत्म-चरित्र का अनुशीलन १४५.
,,	,,	१४४	१५२
७	३०	पित-तत्त्व	पित्त-तत्त्व
८	१	श्लेषमा	श्लेष्मा
१२	१७	२७३-२९६	२७३-२८१
,,	२२	३०७	३०८-३३१
१४	१०	१२. प्रशस्तियां-६, चित्र ८	१२. प्रशस्तिया-६. उल्लिखित चित्र संख्या क्रमशः ८, ९, ११ व १२ के चित्रों के विवरण

चित्र सूची में पृष्ठ सख्या प्रायः पाठगत पृष्ठों के आधार पर दी गई है, किन्तु ग्रन्थ में चित्र की अवस्थिति कुछ आगे पीछे भी संभव है। ध्यान रहे चित्रों की पृष्ठ संख्या पूर्वार्द्ध या उत्तरार्द्ध में से कहीं भी हो सकती है।

सच्चिदानन्द स्वामी

चित्र-सूची

७. कलकत्ता में गवेषणा युगल—१. स्वामी सच्चिदानन्द जी सरस्वती
२. श्री पं दीन बन्धुजी शास्त्री

८. नर्मदा तीर्थों के ७ चित्र—१

९. हिमालय यात्रा के तीर्थों के ६ चित्र—

१०. दक्षिण यात्रा के चित्र—कामाख्या, रामेश्वरम् ।

११. ५७ के क्रान्तिकारी—सूत्रधार नानासाहब, महारानी लक्ष्मीबाई, श्री मंगल पाण्डे वीर विक्रम सिह, तात्या टोपे ।
आत्म चरित्र को प्रकाश में लाने वाले पुण्य भागियों के कुछ चित्र—
५ चित्र ।

१२. प्रशस्तियाँ—६ दित्र ८

१. अमर कण्टक-नर्मदा का उद्गम, कोटितीर्थ, २. श्री ओंकारेश्वर-सरस्वती नर्मदा के मध्य ३. शिवपुरी ४. माहिष्मती-शंकर-मण्डन की शास्त्रार्थ स्थली ५. अहिल्येश्वर ६. कपिलधाराप्रपात ७. मेडा घाट ।

२. अमर नाथ २. गंगोतरी ३. श्री केदारनाथ ४. जोशी मठ ५. कैलाश ६. राक्षस ताल ७. श्री बद्रीनाथ ८ अलकनन्दा का उद्गम ।

३. श्री जगदीश चन्द्र जी डाबर २. श्रीमती वेद प्रभाजी डाबर ३. श्रीमती प्रेमवती जी दर्शन ४. सहयात्री श्रीरामचन्द्रजी डाह्याभाई पटेल ५.श्रीमोती गणेश भाई पटेल ।

४. श्री स्वा० ब्रह्मानन्द जी आर्य चाणोद कर्णाली, पोस्टाचार्य श्री देवदत्त जी व्याकरण वेदान्ताचार्य, ४. महात्मा आन्दभिक्षु जी ५. स्वा. वियाना-नन्द जी सरस्वती-रोहतक ६ सर्व श्री आनन्द स्वामी जी महाराज ।

हार्दम

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो' न मेघया, न बहुना श्रुतेन ।
यमेष वृणुते तेन लभ्य, स्तस्मै तनूते नूँस्वाम् ।।उपनिषद

आत्मा परमात्मा का ज्ञान प्रवचनों से प्राप्त होगा नहीं, न तर्क से, न वेदादि शास्त्रों के पढ़ने-सुनने से । जिन पवित्र आत्मा को भगवान् अपना लेते हैं, उसी को प्राप्त होता है । भगवान् उसके लिए अपना स्वरुप व्यक्त कर देते हैं ।

नैषा मतिस्तर्केण आप्नेया'

आत्म ज्ञान तर्क से होने वाला नहीं है ।

तर्कस्याप्रतिष्ठानम्—वात्स्यायन भाष्य

तर्क की प्रतिष्ठा नहीं । अंतिम निर्णय नहीं ।

इस लिए अनार्ष ज्ञान के उपाधिधारी, डाक्टर,एम.ए प्रोफेसर, आचार्य, शास्त्री, तीर्थ, स्वयंभू ऋषि, नेता, राजसी सन्न्यासी आर्षज्ञान को समझ नहीं पाते हैं, प्रसार तो बहुत आगे की स्थिति है । वेतनोपजीवी धर्म के वकील भी धर्मप्रसार नहीं कर सकते हैं । वे केवल रोचक पाचक प्रसन्न कर चूर्ण ही बेच पाते हैं, पौष्टिक आहार नहीं । यहि कारण है कि दयानन्दानुयायी भी न वेदका गहन अध्ययन स्वयं कर पाते हैं, न बालकों करा पाते हैं । प्रभु प्राप्रि को एक मात्रसाधन योगाभ्यास की तो रुचि ही न गण्य है । आर्षपाठ विधि और शास्त्रों का अध्ययन जनता से समाप्तसा है । समाज बर्गहीन बन गया है । गुण कर्म स्वभाव की वर्ण व्यवस्था केवल सत्यार्थ प्रकाश को ही शोभित कर रही है । आश्रम व्यवस्था भी वर्तमान युगानपेक्षित हो गई है, सारा जीवन गृहस्थ को ही अर्पित कर दिया गया है । राजनीति वर्णाश्रम धर्म की स्थापना के लिये थी । वह भी केवल अधिकार शासन या धन बटोरने को रह गई है । नेतृ वर्ग तो इसमें बुरी तरह फँसा है । अब कुछ सन्न्यास की होड सी चली लगती है । पर बिना

वानप्रस्थ में या प्रथम ब्रह्मचर्य में ही योग सिद्ध किये सन्न्यास कृतकार्य नहीं हो सकता। गेरुये रंग में भी अधिकार पैसे की खैंचा तानी और दल बन्दी रही तो ऐसे सन्न्यास को धिक्कार है। विना ऋषि बने वेद का मन चाहा अर्थ भी योग के महत्त्व को नहीं बढ़ा सकता, धन दे सकता है। योग की अन्यसाधनायें भी धन दे सकती हैं। विना केवल वैराग्य ही नहीं, अपितु पर वैरागी दयानन्द सा अवधूत बने विना योग भी सिद्ध न होगा।

इन परिस्थितियों में संसार ऐसे ब्रह्मचारियों या पचास से ऊपर वाले वान प्रस्थों की प्रतीक्षा में है। जो कम से कम १० वर्ष तक योग सिद्ध होकर अवधूत योगिराज दयानन्द की तरह वेद प्रचार में लगें संसार को आलोकित करें। मार्ग प्रदर्शन करें, सूर्य, चन्द्र ही संसार को आलोकित् कर सकते हैं, तारा गण नहीं।

योगी का यह आर्तनाद सशक्त, समर्थ, विरक्त युवकों, ऋषि के दीवाने आर्यों के अन्तस्तल पहुँचेगा। दयालु भगवान् दया करेंगे।

—सच्चिदानन्द स्वामी योगी

—पूर्वार्द्ध

अनुसंधान

ओ३म् सच्चिदानन्दाय नमो नमः ।

योगावतरण

योगी ही ऋषि हुए—

योगी परम्परा की मान्यता है[1]—"हिरण्यगर्भ ब्रह्मा ही योग के आदि प्रवक्ता हैं । अन्य—कोई नहीं ।" जितने ऋषि हुए हैं सब योगी हैं । ऋषि लोग धर्म को - गुण को साक्षात् करने वाले होते हैं ।[2] परमात्मा के सत्, चित्, आनन्द तीनों गुणों को, आत्मा की चेतनता और प्रकृति की सत्ता को ऋषि लोग साक्षात् करने वाले होते हैं । 'यह साक्षात् योग-जन्य ही है, शास्त्र गम्य नहीं । योगी ही शब्द, ज्ञान और पदार्थ के मिले जुले संकर ज्ञान को अलग अलग विभाग करके एक ही शब्द पर धारणा, ध्यान, समाधि का प्रयोग—संयमजय अर्थात् स्वाभाविक संयम की स्थिति का लाभ कर उस का प्रयोग करने पर प्राणिमात्र की बोली को-भाषा को जान लेता है ।[3] ऐसे योगी ऋषि ही मन्त्र-द्रष्टा होते हैं ।[4]

प्राचीन और अर्वाचीन भारत-गौरव सब ही ऋषि मन्त्र-द्रष्टा थे । ब्रह्मा, विष्णु, महेश, वसिष्ठ, विश्वामित्र, अगस्त्य, मनु, नारद सब ही मन्त्र-द्रष्टा थे :—

ऋषि	मन्त्र
हिरण्यगर्भ ब्रह्मा-परमेष्ठीप्रजापति-स्वयंभू ब्रह्मा आदि ने	यजुः १ अध्याय, २ अध्याय के ऋषि हैं। दोनों के अर्थों का साक्षात् किया। ऋग्वेद के मण्डल १० के १२१ वें सूक्तका साक्षात् किया।

१—"हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः कश्चन पुरातनः ।"

२—"साक्षात्कृतधर्माण ऋषियो बभूवुः" —यास्कः निरुक्ते ।

३—"शब्दार्थ-प्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरस्तत्-प्रविभाग संयमा त्सर्वभूतरुतज्ञानम्'—यो० ३. १७.

४—ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः ।" निरुक्ते ।

	यजु० अ० २३ क मन्त्र १ से ६५ तक के
	,, १६ ,, ४० से ६६ ,, ,,
	,, ३२ ,, १ से १२ ,, ,,
नारायण (विष्णु) ने	,, ३० ,, १ से ३ ,, ,,
	,, ३१ ,, १ से १६ ,, ,,
	सामवेद के ,, ६. ३. १३., ३. ७. १७ से २८ तक का
भर्गः (महादेवजी) ने	सामवेद के ३. १. ७., ३. २. ९-२७, ५. १. १-१४, ५. १. २. १५ तक का साक्षात् किया।
वसिष्ठो मैत्रावरुणि:	यजुः के अध्याय ३३ के १४, १८, २०,४०,७०, ७६, ७७, ८८ मन्त्रों का., ५ के, १६. ११७; ३ अध्याय के ६०,६१ का
विश्वामित्रो गाथिनः	यजुः के ७ अध्याय के ३१. ३५ से ३८ के ३६ के, मन्त्र ३ गायत्री प्रणवव्याहृतिसहित देवीबृहती छन्दवालीका।
अगस्त्यो मैत्रावरुण:	यजुः ३३ अध्याय के २७,३४ के ७८,७९ का, ३४ ,, ७ से ९ का
मनु वैवस्वत	यजुः के ८ अध्याय के २७ से ३१ तक
याज्ञवल्क्य	,, २६ ,, १ मन्त्र का,
नारद	सामवेद के मन्त्र ४.२.१०.१ का

अर्थों का साक्षात् किया।

योगी दयानन्द ने भी स्वीकार किया है कि 'जिन्होंने सारी विद्यायें यथावत् जान ली थीं वे ऋषि हुए'।[१] ऋतंभरा प्रज्ञा योगी को ही मिलती है। धारणा, ध्यान, समाधि के सतत् एक विषय में स्वायत्त करने से प्रज्ञालोक नाम की ऋतंभरा का उदय होता है।[२] ऋतंभरा प्रज्ञा से जो कुछ योगी जानता है वह सर्वोत्कृष्ट ज्ञान होता है।[३] शास्त्रों के पढ़े लिखे दूसरों के किये अर्थों को

१—"यैः सर्वा विद्या यथावद् विदितास्त ऋषियो बभूवुः।" ऋ०भे०भा० पृ० ६४६.

२—"तज्जयात्प्रज्ञालोक:।" यो० ३.५.

३—"तज्जः संस्कारोऽन्य संस्कारप्रतिबन्धी।" यो० १.५०.

... रूप में जानता है। श्रुत और अनुमान ज्ञान से ऋतंभरा का ज्ञान ... उत्कृष्ट होता है। ऋतंभरा से उत्पन्न ज्ञान अन्य सब संस्कारों के ... को प्रतिबन्धित कर देता है।[1]

ऋषियों ने ही वेदार्थ जाना—योगी दयानन्द ने एक बढ़िया बात ... है—

...) वेदों का अर्थ उन्होंने कैसे जाना ?

उत्तर) परमेश्वर ने जनाया। धर्मात्मा योगी (धर्म को साक्षात् ...) महर्षि लोग जब जब जिस जिस मन्त्र के अर्थ को जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वर के स्वरूप में समाधिस्थ हुए तब ... परमात्मा ने अभीष्ट मन्त्रों के अर्थ जनाये।"

सब ऋषियों ने समाधि लगा लगा वेदार्थों को जाना।

ये सब योगी ऐतिहासिक महापुरुष हुए हैं—"सब कोई जानते हैं कि [श्री रामचन्द्र, श्री कृष्ण, नारायण, और शिव आदि] बड़े महाराजा-... और उनकी स्त्री सीता, रुक्मिणी, लक्ष्मी और पार्वती आदि ...नियां थीं।" —सत्यार्थ प्रकाश ११ समु०

"ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वर-रचित पदार्थ हैं ... मैं भी मानता हूं।" —स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश

ब्रह्म के अवतार—महादेव कैलाश के रहने वाले थे। कुबेर ...पुरी के रहने वाले थे। —उपदेश मञ्जरी पृ० ११६

इतिहास सिद्ध कर रहा है कि ये सब ब्रह्म के अवतार थे। उतरने ... थे। ब्रह्म इन के आत्मा में उतरा हुआ था। ये समाधिस्थ रहते ... दर्शन करते थे। व्युत्थान दशा में भी ब्रह्म साक्षात् रहता था। ... समय उतरा रहता था। इस लिये ये अवतार थे।

ब्रह्मा जी ऋतंभर-प्रज्ञ थे। चारों वेद उपथिस्त थे। विवेकजज्ञान ... थे। सब विषय का इनको ज्ञान था। कुछ भी छिपा नहीं था। ... प्राप्त था। अक्रम था।

...जी को अस्तेय सिद्धि था। संसार के सब रत्न उनको प्राप्त थे। ... हुए भी मधुमती भूमिक थे। सब सम्पत्ति, वैभव उपहृत होते ... उनके सङ्ग, स्मय से बहुत दूर थे। समाधि निरत थे।

---

[1] —"...नुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात्।" यो० १. ४९.

महादेवजी अहिंसा प्रतिष्ठ थे। सारे ही यम इनमें स्थिति लाभ किये थे। सांप लिपटे रहते थे। मूषक पास में कल्लोल करते थे। कार्तिकेय का मयूर भी पास में नृत्य करता रहता था। मृत्युंजय थे। रुण्ड मुण्डों की माला और श्मशान की भस्म इनके अंग की शोभा थी। कल्याणकर थे। मस्तिष्क सदा शान्त, चन्द्र और गंगा सा शीतल रहता था। मानो चन्द्र, गंगा वहां वास कर रहे हों। गृहस्थ होते हुए भी पूर्ण ब्रह्मचारी थे। पूर्ण विरक्त दिगम्बर थे। क्लेश कर्म को योगाभ्यास से दग्ध कर दिया था। पार्वती का तप भी उग्र था। अपर्णा रही थीं। इन्हीं गुणों से कैलाशवासी कैलाशाधिपति बने।

नारदजी—उदान जयी थे। लोक लोकान्तर में उनकी अबाध गति थी।

व्यासजी—विलक्षण ऋतंभरा थी। चारों वेदों का ओर से छोर तक मनन निदिध्यासन था। ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रणयन इनकी ही शिष्य परम्परा का आश्चर्यकर कार्य था। ४५० वर्ष के युगद्रष्टा थे। १५० वर्ष घोर तप कर शुक सा पुत्र लाभ किया था। श्रुति-आधारित वेदान्त की रचना की थी। मीमांसा और योग पर अनुभव सिद्ध प्रामाणिक भाष्य लिखा था। महाभारत जैसे इतिहास और गीता जैसे भगवद्वाक्य की रचना की थी। इनकी महत्ता और ऋतंभरा के कारण महाभारत पञ्चम वेद कहलाया। योग की महिमा अगाध है।

गायत्री द्रष्टा विश्वामित्र—योगी विश्वामित्र प्रधान-जयी थे। घोर तपस्वी थे। राजपाट परित्याग कर तपो बल से ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था। यही महामहिम देवीबृहती छन्द वाली सप्रणवमहाव्याहृति गायत्री के मन्त्रार्थ द्रष्टा थे। पूर्ण योगी थे। योग का प्रचार किया था। गायत्री मन्त्र के आदेशानुसार भगवान् को पाया था। इनका दृष्ट मन्त्र ही गुरु मन्त्र बना—

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम्, भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ यजु० ३६. ३.

—सत्, चित्, आनन्द स्वरूप ओम् है। उस पापों को भूनने वाले ओम् के श्रेष्ठतम स्वरूप का ध्यान करें। जो हमारी बुद्धि में स्थित ध्यान को प्रेरित कर समाधि तक ले जाये।

लम्बी सम्प्रज्ञात समाधि से प्रकृति, आत्मा, परमात्मा के शुद्ध रूप का ज्ञान-विवेक प्राप्त करे।

योगीराज भगवान् कृष्ण सिद्ध योगी थे। आपको काय-संपत् प्राप्त

... आठों महासिद्धियों के सिद्ध स्वामी थे। रूप लावण्य अनोखी काय ...थी। शरीर वज्रसम कठोर था। योग प्रधान गीता-सम संसार ... शास्त्र-रत्न का प्रादुर्भाव श्रीमुख से ही हुआ था। अवतारी महा-... थे। जीवन भर धर्मरक्षा और मानव कल्याण के लिये प्रयत्न-... रहे।

योगी दयानन्द—इसी योगी परम्परा में योगी दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ। आजीवन अखण्ड ब्रह्मचर्य इनका लोक विख्यात है। भूत-जयी श्रेणी ... अभ्यास चालू था। कलिकाल के मानव उद्धार के लिये ही इन्होंने जन्म लिया था।

आप उच्च कोटि के ऋतंभरप्रज्ञ योगी थे। जहाँ ऋषियों ने अध्यात्मों ... कुछ मन्त्रों का ही साक्षात्कार किया वहाँ **योगी दयानन्द** ने लगभग ...ह सहस्र १२००० मन्त्रों का योग समाधि से साक्षात्कार किया। ...धि में चारों वेदों के मन्त्रों की विषय सूचि भाष्य से पहले ही लिखा दी ... भाष्य सम्पूर्ण यजुर्वेद का और ऋग्वेद के ७वें मण्डल के ७३वें सूक्त ... का मिलता है। कैसा अपूर्व योगी था। खाने-पीने की समस्या उसके ... नहीं थी। आबू की गुफाओं और हिमालय में वह अब्भक्ष और वायु-... ही रहा था। लम्बी लम्बी समाधियाँ लगाते थे पर वह अपनी योग ...द्धियां किसी को दिखाते न थे।

योगी दयानन्द के विलायत में अनेक भक्त थे। एक बार सेण्ट साहब ने ...गेश्वर से कहा—"हमें कुछ योग सिद्धियां दिखाइये।"

योगी ने मना कर दिया। योगीराज ने १४ जुलाई १८८० को कर्नल ...लकाट को लिखा था—

"जो मैं ने सेण्ट साहब से कहा था वह ठीक है क्योंकि मैं इन इन्द्र-जाल की बातों को देखना दिखाना नहीं चाहता चाहे वे हाथ की चालाकी ... चाहे योग की रीति से। क्योंकि योग का अभ्यास किये बिना ... को भी उसका महत्व वा उसमें सच्चा प्रेम कभी नहीं हो सकता वरन ...देह और आश्चर्य में पड़ कर उस आडम्बर की परीक्षा और सब सुधार ... बातों को छोड़ कौतुक देखने को सब चाहते हैं। उसके लिए साधना ... स्वीकार नहीं करते।

सेण्ट साहब को **मैंने न दिखलाया, और न दिखलाना चाहता हूं'** चाहे वह प्रसन्न रहें या अप्रसन्न, क्योंकि जो मैं इस में प्रवृत्त हो जाऊं तो ... मूर्ख और पण्डित यही कहेंगे कि हम को भी कुछ योग की आश्चर्यमय ...द्धियां दिखलाइये जैसे अमुक को आपने दिखलाईं।

ऐसी कौतुक लीला मेरे साथ भी लग जाती जैसी मैडम ऐच० पी० ब्लॉवैटस्की के पीछे लगी हुई है।" "जो कोई आता है वह यही कहता है कि मैडम साहब ! आप हम को भी कुछ तमाशा दिखाइये। इत्यादि कारणों से इन बातों में प्रवृत्ति नहीं करता न कराता हूं। किन्तु कोई चाहे तो उस को योगरीति सिखा सकता हूं जिसके अनुष्ठान से वह स्वयं सिद्धि को प्राप्त हो सकता है।"

"जो सत्य धर्म, सत्य विद्या और ठीक २ सुधार की और **परमयोग आदि की** बातें सदा से जैसी आर्यावर्त्तीय मनुष्यों में थीं वैसी कहीं न थीं और न हैं।"

"**धर्म दिवाकर**, मासिक, कलकत्ता ने लिखा-"अठारह घण्टे की समाधि लगाने वाले जिस (**दयानन्द**) को लोग परमयोगी, जड़भरत का अवतार कहते हैं, वह कहीं भी अपने आप को लोगों में योगी प्रसिद्ध करने की चेष्टा नहीं करता। भला सच्चे गुलाब को बनावट की क्या आवश्यकता"

—भाग १ अंक ८ पृ० १२४ से १२८ मार्गशिर सं० १९४०.

योगी दयानन्द सिद्धियाँ दिखाते तो नहीं थे पर उन को यथावसर काम में अवश्य ले आते थे। इस को उन्होंने स्वयं श्रीमुख से कहा भी था।

योग सिद्धि बिना बड़ा कार्य नहीं होता—"एक दिन पश्चिमी विज्ञान के एक पण्डित ने योग की सिद्धियों की सत्यता में शंका की। महाराज ने पहले तो युक्ति प्रमाण द्वारा उन की सत्यता निरुपित की और अन्त में यह कहा—

"**क्या आप यह समझते हैं कि हम इतना बड़ा कार्य योग सिद्धि के बिना ही कर रहे हैं।" इस पर वह शान्त हो गया।**

ऋषि की योग सिद्धियां—

जो अन्यो ने देखा वह पढ़िये—

प्रकाश का चक्र—"एक दिन सवेरे एक काषायाम्बर धारी बिहारी ब्राह्मण दण्ड-कमण्डलु लिए नौलखा उद्यान में आ निकला। उसने दूर से देखा कि कोई महात्मा पद्मासन जमाये ध्यान में लीन है। वह और निकट आया। महामुनि की मनोहारिणी मूर्ति को एक टक, लालायित लोचनों से निहारने लगा। बाल सूर्य की सुनहरी किरणें उन की कुन्दन समान दीप्तिमान् देह पर पड़कर उसे और भी देदीप्यमान कर रही थीं। स्वर्ण कलश की भान्ति उन का मस्तक चमक रहा था। तप्त ताम्र समान उनके दोनों हाथों की हथेलियाँ मुद्रा बद्ध दशा में शोभायमान थीं। सूर्य की तरुण किरणों

ने प्रकाशित उनके अरुण वर्ण नख नवपल्लव सदृश लहकते दिखाई देते थे। उदय कालीन सूर्य समान रक्त वर्ण उनके दोनों होटों पर एक नीरव, अनुपम और अनिर्वचनीय आनन्दमयी मुस्कान खेल रही थी। उस बिहारी ब्राह्मण को ऐसा प्रतीत हुआ कि सर्वाङ्ग सुन्दर स्वर्ण प्रतिमा के चहुँ ओर प्रकाश पुंज का एक चक्र सा बना हुआ है।" दयानन्द प्रकाश पृ० ५४६

अवधूत अवस्था—"जिन दिनों स्वामी जी प्रयाग में निवास करते थे, उन दिनों शीत अधिक पड़ता था। स्वामी जी रात दिन सिर्फ एक कौपीन पहने रहते थे और कोई कपड़ा न पहनते थे। न ओढते थे। यहाँ तक कि रात को भी जब बर्फ पड़ती तो गङ्गा के किनारे खुले मैदान में रेत पर या किसी चबूतरे पर ऐसे आराम से सो जाया करते थे जैसे कोई किसी गरम कमरे में लिहाफ तोशक के अन्दर सोता है।" पृ० ११४ म. द. जी. च

सती की मढ़ी—"उस समय उनका रेत का विस्तर, ईन्टों का तकिया रहता था। उनके पास केवल एक कौपीन थी। वस्त्र ग्रहण नहीं करते थे।" —आर्य धर्मेन्द्र जीवन पृ० ८८.

कर्णवास में—माघ में एक दिन प्रातः काल अत्यन्त शीतल वायु चल रहा था। कडाके का जाड़ा था। महाराज पद्मासन लगाये उपदेश में रत थे। उनपर शीतातिशय का प्रभाव न था।

ठाकुर गोपालसिंह ने पूछा—"आप पर शीत का कोई प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता। महाराज बोले—ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास ही इस का कारण है।"

ठाकुर—"हम कैसे जानें?"

महाराज ने अपने हाथों के अंगूठे दोनों घुटनों पर रख कर दबाये। और सारे शरीर से पसीना चू निकला। लोग चकित हो गए। उन्हें महाराज के योग में पूरा विश्वास हो गया।

——पृ० ११४ देवेन्द्र बाबू लिखित जीवन चरित्र

"मैंने पहाड़ के नीचे जो मार्ग जाता था उसे पकड़ लिया। मैं वन की ओर अलकनन्दा के साथ साथ चलने लगा। पर्वत और पर्वत के नीचे मार्ग सब ही मोटे वर्फ से ढका हुआ था। इस कारण मैंने बहुत ही कष्ट से उस दुर्गम मार्ग का अतिक्रम किया और जो स्थान अलकनन्दा का उत्पत्ति स्थान है वहां पहुँच गया। वहाँ मैंने देखा कि मेरे चारों ओर ही गगनभेदी पर्वतमाला खड़ी है। किसी ओर से भी मार्ग का कुछ पता न पाकर कुछ देर तो मैं इतस्ततः घूमता

रहा। और कुछ आगे बढ़कर मैंने देखा कि मार्ग तो क्या मार्ग का चिन्ह तक भी न था। इस हेतु से मैं थोड़ी देर तक तो किंकर्तव्य-विमूढ़ सा रहा। पीछे नदी के तट पर जा कर मार्ग का अनुसन्धान करना ही कर्तव्य स्थिर किया।

उस समय मैं साधारण और पतला कपड़ा पहने हुए था और वहां का शीत बहुत ही अधिक और असह्य था।"

—थियासोफिस्ट आत्म चरित्र।

यह पतला कपड़ा टिहरी चित्र वाला छाती पर बंधा कटि वस्त्र ही है। इस प्रकार शीत में—हिम में घूमना समान-जय की घोषणा करता है।

समान जयाज्ज्वलनम्। —यो ३.५०।

योग में ऋषि ने इस का अभ्यास किया हुआ था।

कायम गंज—मार्गशीर्ष १९२५—"जब भोजन का समय हुआ लोगों ने स्वामी जी से कहा 'महाराज स्नान कर लीजिये। भोजन पा लीजिये।"

वह बोले—"हमारे पास सिवाय एक लंगोट के और कुछ नहीं है, यहां माइयों का गमनागमन है। जब तक लंगोट नहीं सूखता तब तक हम कोई दूसरा वस्त्र धारण नहीं कर सकते। हम यहाँ स्नान के बाद नग्न नहीं रह सकते।"

तब सब लोगों के कहने से वह लाला गिरधारी लाल के बाग में जा एकान्त में गये, स्नान और भोजन किया। —म. द. जी. च. पृ० १३०.

शीताधिक्य होने पर भी वह कोई वस्त्र न पहनते थे। यदि कोई उन्हें गरम कपड़ा दे जाते तो या तो किसी ब्रह्मचारी को दे देते या गरीबों को बांट देते थे। मिष्टान्नादि भी लोगों को बांट देते थे।

—म. द. जी. च. पृ० २४९

"अवधूत दशा में ४०। ४० मील चलना मेरे लिए कोई बात न थी। मैं लगातार कई कई दिन तक तप्तरेणु में पड़ा रहा हूँ और हिमाच्छादित पर्वतों में और गङ्गातट पर नग्न और निराहार सोया हूं।"

मेरठ में अपने भक्तों से प्रेमालाप करते हुए महाराज ने अपने जीवन की ये घटनायें सुनाईं। —म. द. जी. च. पृ० ६२२.

फर्रुखाबाद—लाला जगन्नाथ ने स्वामी जी के लिये उनके स्थान पर पयाल (धान की पुराल) डलवा दी थी। रात्रि में वह उसी में से कुछ अपने नीचे और कुछ ऊपर डाल कर सो जाते थे। लोग कम्बल आदि देना चाहते तो न लेते थे। —म. द. जी. च. पृ० १३३

कानपुर—तीन मास रहने के पश्चात् एक दिन प्रातः काल बिना किसी को सूचना दिये लंगोट, वस्त्र और नस्य की पुड़िया छोड़कर अनिर्दिष्ट स्थान को चल दिये। स्वामी जी एक ही लंगोट रखते थे। कानपुर में एक सज्जन ने उन्हें दूसरा लंगोट दे दिया परन्तु यात्रा में दूसरे लंगोट का रखना उन्हें भार प्रतीत हुआ, इसलिये जाते समय उसे कानपुर ही छोड़ गए। —म. द. जी. च. पृ० १५८.

शोलये तूर—कानपुर ने इस प्रकार लिखा है—सं० १८६६ में—"संस्कृत के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा में बात-चीत नहीं करते। एकान्त वासी साधु हैं। किसी स्थान पर आते जाते नहीं। अवधूतों की सी आकृति है..." —म. द. जी. च. पृ० ६३१.

उदयपुर महाराज ने कहा—"ऐसा मनुष्य सांसारिक धन्धों से सर्वथा स्वतन्त्र तुम ने कोई देखा है। ऐसा होना कठिन है।"—पं० लेखराम —म. द. जी. च. पृ० ६०४.

अधर में समाधि—प्रयाग की घटना—"पण्डित ठाकुर प्रसाद जी के हृदय में स्वामी जी की योगमुद्रा देखने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई। एक दिन स्वामी जी के सेवकों से पूछ कर वे उस कुटिया के द्वार पर जा खड़े हुए जिसके भीतर स्वामी जी ध्यानावस्थित थे। यद्यपि द्वार बन्द था परन्तु किवाड़ों के छिद्रों में से महाराज की आकृति स्पष्ट दीख पड़ती थी। ठाकुर प्रसाद जी बहुत देर तक महाराज के दर्शन करते रहे। उन्होंने यह भी देखा कि महाराज का आसन धीरे धीरे भूमि से ऊपर उठकर **अधर में अवस्थित** हो गया। उस समय उनकी मुद्रा की अद्भुत छवि थी। उनके मुखमण्डल पर एक प्रकाशमय चक्र बना हुआ था।

—दयानन्द प्रकाश पृ० २६६.

उदानजय—यह योगी दयानन्द का उदानजय था। देखो यो. ३. ३६.। इस उदान पर वशित्व होने से उत्क्रान्ति, ऊपर उठना सिद्ध होता है। जल कण्टक आदि में धंसता नहीं। प्रतीत होता है इसी उदानजय से ऋषि ने हिमालय की यात्रा की।

७० मील की हिम यात्रा १२ घण्टे में—अलकनन्दा स्रोत तक की

यात्रा कठिनतम है। पूरी सामग्री-छोलदारी, भोजन, कुली लेकर कोई कोई यात्री केवल सत्पथ तक की १४-१५ मील की यात्रा ८ दिन में करते हैं। सत्पथ से अलकनन्दा का स्रोत २० मील से अधिक है। वहां तक कोई यात्री नहीं जाता, मार्ग ही नहीं है। यात्राओं में वर्णन इस प्रकार लिखा है :—

वद्री नारायण से ब्रह्म कपाल तीर्थ होते हुए नीचे ब्रह्म कुण्ड तीर्थ है; उससे आगे अलकनन्दा के मोड पर आधा मील दूरी पर अत्रि अनसूया तीर्थ है। माणा सड़क पर हो २ मील तक है। पास हो इन्द्रधारा श्वेत झरना है जिसे इन्द्रधारा इन्द्रपद तीर्थ कहते हैं। इस पार धर्म क्षेत्र है। ३ मील पर माता मूर्ति देवी का छोटा मन्दिर है। उस पार माणा ग्राम ३ मील पर है। इस पार अनेक तीर्थ हैं। वसुधारा ५ मील पर है। झरना गिरता है। छोटी २ फुआर वहुत दूर तक गिरती हैं। धारा में स्नान करना परम पुण्य माना जाता है। पर यात्रियों का कहना है—"वहां स्नान करना मृत्यु को बुलाना है। अतः ऐसे ही लौट आते हैं। आगे जाना चाहा पर हिम्मत न पड़ी। सामान और ५ घोड़े साथ थे। पर फिर भी लौट आये।' यह आप वीती श्री अर्जुनदेव जी गोगिया कलकत्ता वासी ने वतायी। इससे आगे भोज पत्र वृक्ष मिलते हैं। लक्ष्मी वन ४ मील है। आगे लक्ष्मी धारा है। उस से आगे मार्ग अत्यन्त कठिन है। सैङ्कड़ों धारायें हैं। नारायण पर्वत सीधा दीवार सा है। आधा मील पर चक्र तीर्थ है। त्रिकोण सरोवर है। सत्पथ ४ मील पर है। यहां तक की यात्रा खच्चर, कुली, पूरे सामान के साथ आठ दिन की है। आगे गोल कुण्ड जल रहित है। आगे सोम तीर्थ है। आगे वर्फ ही वर्फ है, मार्ग नहीं है। नर, नारायण पर्वत यहां मिल गए हैं। कुछ दूर पर एक छोटा सूर्य कुण्ड है। विष्णुकुण्ड कुछ दूर है। त्रिकोण पवत लिङ्ग के आकार का है। भागीरथी अलकनन्दा संगम है। आगे अलकापुरी शिखर है। विष्णुकुण्ड है। अलकनन्दा की मूलधारा। स्वर्गारोहण शिखर सोपानमय पर्वत है। इस से आगे अलकनन्दा स्रोत है। दूसरे किनारे से लौटते समय अच्छा मार्ग है। सत्पथ, वसुधारा, व्यासगुफा, जहां व्यास ने शास्त्र लिखे, पास ही गणेश गुफा है। शम्यास तीर्थ, माणा, सरस्वती धारा, केशव प्रयाग, अलकनन्दा पर पुल-भीमशिला जिसे भीम ने उठा कर धारा पर रख कर पार करने का पुल सा वना लिया था। यही मानसोद्भेद तीर्थ है। वस आगे वद्रीनाथ आ जाता है।

यदि कोई साहसी करे तो यह यात्रा एक मास से कम में नहीं होती, ऐसी तीर्थ-यात्रा लेखकों की मान्यता है। पर योगी की बात विचित्र है। अपने थियासोफिस्ट वाले आत्म चरित्र में लिखते हैं—"एक दिन सूर्योदय के होते ही मैं अपनी यात्रा पर चल पड़ा और पर्वत की उपत्यका में होता हुआ अलकनन्दा के तट पर जा पहुंचा"। (पृ. ३४) आगे पृष्ठ ३८ पर लिखा है—"उसी सायं लगभग ८ बजे बद्रीनारायण जा पहुंचा।"

'अर्थात् अलकनन्दा की यात्रा केवल १२ घण्टे में की। अलकनन्दा स्रोत बद्रीनारायण से ३५ मील पड़ता है। ३५ मील बर्फ में बद्रीनाथ की १०२४८ फिट की ऊंचाई से, सतोपथ १४००० फिट, अलकापुरी १५००० फिट ऊंचाई तक बर्फ में जाना, एक ही चद्दर में जाना, नंगे पैर जाना, यात्रा एक मास की १२ घण्टे में पूरी कर लेना, योग का चमत्कार नहीं तो क्या है। यह यात्रा उदानजय के द्वारा हिम स्तर से असङ्ग रह ऊपर ऊपर आकाश में चले बिना नहीं हो सकती। यही कारण है कोई भी योगी का जीवन गवेषक इस यात्रा का वृत्तान्त अपनी आंखों न देख सका। जो कुछ योगी ने लिख दिया उसी को साहित्यमयी भाषा में लिखकर सन्तोष कर लिया।

कश्मीर, कैलाश—गंगासागर, रामेश्वर यात्रा—इसी उदानजय के आधार से ऋषि ने कैलाश तक की यात्रा की थी। उपदेश मञ्जरी (पूना-व्याख्यानों) में १०४ व्याख्यान में योगी दयानन्द ने कहा था—"महादेव कैलाश के रहने वाले थे। कुबेर अलकापुरी के रहने वाले थे। यह सब इतिहास केदारखण्ड का वर्णन किया गया है। हम स्वयं भी इन सब ओर घूमे हुए हैं।" कैलाश की ऊंचाई २२०३८ फिट है। माना मार्ग १७००० फिट ऊंचा है। वहीं कुल्लु के पहाड़ों में पार्वती घाटी है। यह १५००० से अधिक उंचाई पर है। योगी यहां सब स्थानों पर उदानजय और समान-जय के सहारे घूमे थे।

'मेरठ में अपने भक्तों से प्रेमालाप करते हुए महाराज ने अपने जीवन की कुछ घटनायें भी सुनाई थीं। "आप इस समय आश्चर्य करते है कि मैं इतनी दूर तक वायु सेवन के लिये जाता हूं परन्तु अवधूत दशा में चालीस चालीस मील चलना मेरे लिये कोई बात न थी। मैं एक बार गंगोत्तरी से चल कर गंगासागर तक और एक बार गङ्गोत्तरी से रामेश्वर

तक गया था 'बद्रीनाथ में रह कर मैंने गायत्री का जपानुष्ठान किया था। रात्रि में जब तेल न रहता था तो मैं बाजार के दीपक के प्रकाश में पढ़ा करता था। मैं लगातार कई दिन तक मध्याह्न में तप्तरेणु में पड़ा रहा हूं। और हिमाच्छादित पर्वतों में और गङ्गा तट पर नग्न और निराहार सोया हूं।''

—महर्षि का जीवन चरित्र—पृ. ६२२.—दे. बा.

इन लेखों के उद्धरणों और पर्वतीय यात्राओं से उदानजय और समानजय की बात तो स्पष्ट होती ही है, साथ यह भी स्पष्ट हो रहा है कि योगिराज दयानन्द काश्मीर से कैलाश तक, गंगोत्तरी से पूर्व में गंगा सागर तक और दक्षिण में रामेश्वर तक सर्वत्र भारत भू का भ्रमण कर चुके थे। यह यात्रा वर्णन सिवाये इस आत्म चरित्र के अन्यत्र कहीं नहीं है। अतः योगी का यही परम पावन विशुद्ध पवित्र आत्मचरित्र है।

थियासोफिस्ट में छपा आत्मचरित्र बहुत संक्षिप्त है। देखिये पत्र विज्ञापन में पत्र २७ अगस्त १८७२ का पत्र सं० १८३ :—

''कुछ थोड़ा सा जन्म चरित्र लिख कर भेजते हैं। हमारा शरीर दस्तों की बीमारी से बहुत दुर्बल हो गया था।''

१८८ संख्या के पत्र में लिखा है—''यह संक्षिप्त जीवन चरित्र ८ मास की लम्बी बीमारी में लिखा गया है।''

१७८ संख्या के पत्र में लिखा है :—

(3) The question with regard to my life, I should say that at present, I am not quite prepared to undertake so long a business. I shall give you a brief account of me after some time. I shall do this work myself or have it done directly under my own eye. Certificate will follow.—मुरादाबाद से, १३ जुलाई १८७९।

पत्र सं० १९६, ६ नवम्बर ७९। ''कर्नल अलकाट साहब को मेरे शरीर का हाल विदित नहीं है कि दस मास तक तो दस्तों का रोग, पश्चात् एक बड़ा ज्वर आने लगा, सो तीन बार आकर छूट गया है। अब दोनों रोग नहीं हैं। परन्तु विचार करो कि इतने रोग के पश्चात् निर्बलता और सुस्ती कितनी हो सकती है। इसमें भी हम को कितने काम आवश्यक हैं जिन से दम भर अवकाश नहीं मिल सकता। जो एक जन्म चरित्र के लिखाने का काम ही होता तो एकबार लिख लिखवा के भेज दिया होता।''

योगसिद्धियों के विषय में मैडम ब्लावेटस्की को लिखा था—पत्र सं० १७९.

(b) "The soul in human body can perform wonders. By knowing the properties and formation of all the things in the universe (between God and Bhumi (earth) A human being can acquire powers of seeing and hearing etc. far distant objects which generally is unable to attend to."

पत्र सं० १६८, पृ० १४४.

"वैसे ही भीतर के योग से योगी लोग अनेक अद्‌भुत कर्म कर सकते हैं।"

"इसमें कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि मनुष्य लोग जितनी विद्या बाहर के पदार्थों से सिद्ध कर सकते हैं उससे कई गुणा अधिक भीतर के पदार्थों से सिद्ध कर सकते है। जैसे बाहर के पदार्थों का उपयोग बाहर से होता है, वैसे ही भीतर के पदार्थों का उपयोग भीतर से होता है। जैसे स्थूल पदार्थों की क्रिया आँखों से दीख पड़ती है, वैसे सूक्ष्म पदार्थों की क्रिया आँखों से नहीं दीख पड़ती, इसी लिये लोग आश्चर्य मानते हैं।

—"योग से कुछ नहीं होता, सर्वथा मिथ्या है। अब भी ऐसे लोग विद्यमान हैं कि योग बल से पृथ्वी से हाथ भर तक ऊपर उड़ सकते हैं और ठहर सकते हैं।"

—श्री लेखराम लिखित म. द. स. जी. च. पृ. ६४२ हिन्दी।

—पत्र सं० १२८

Though I am very anxious that my auto-biography which you are publishing in your journal should be completed, I have not yet been able to give the necessary time to it. But as soon as possible I will send the nerrative to you.

—थियोसोफिस्ट अप्रैल १८८० पृ० १९०.

इन उद्धरणों से सुस्पष्ट है स्वामी जी थियोसोफिस्टों को जीवनी देने के लिए बहुत उत्सुक नहीं थे। उनसे आशंकित थे। मार्च ८२ के अन्त में ऋषि को लम्बा विज्ञापन छपाना पड़ा था जिसमें थियासोफिस्टों के अयुक्त व्यवहार के ९ कारण दिये हैं। अन्तिम पंक्ति में लिखा है—

"इस लिय यहां निश्चय है कि इन थियासाफिस्टों की सोसाइटी और इनकी पूर्वापर विरुद्ध बातें विश्वास के योग्य नहीं हैं। इस लिये इन से पृथक रहना अत्युत्तम है।"

थियोसोफिस्ट वाले भी इस बात को जानते थे :—

"Here the Swami ji skips over one of the most interesting episodes of his travel, unwilling as he is to impart the name or even mention the person who saved him. He tells it to friends but declines to publish the facts. —The Theosophist 1880. P 25.

संक्षिप्ततम जीवनी देने और सब बातें न कह सकने का मुख्य कारण ऋषि दयानन्द का देश की दशा से द्रवित हो ब्रह्मानन्द को छोड़ भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में लगना था। अस्तु। अभी योगी की योग सामर्थ्य का ही अध्ययन कीजिये।

जल पर पद्मासन—' सहजानन्द ने रात दिन महाराज श्री के पास निवास करते हुए देखा कि रात के समय केवल ४ घण्टे भर विश्राम लेते हैं। फिर उठकर ध्यानरूढ़ हो जाते हैं।

नौलखा उद्यान के पास ही एक विस्तीर्ण सरोवर है। महाराज गोवर्द्धन पर्वत को उसी के किनारे किनारे जाया करते। वे तो बहुत सवेरे जाते थे। परन्तु सहजानन्द जी सूर्योदय से कुछ ही पूर्व उसी ओर भ्रमण करने निकलते थे। एक दिन अपने निवास के उद्यान से बहुत अन्तर पर सहजानन्द ने देखा कि स्वामी जी जल पर पद्मासन लगाये योग मुद्रा में कमलदल की भाँति विराजमान हैं। गुरुदेव की इस मनोहर योग मुद्रा ने उन के मन में गहरा भक्ति भाव उत्पन्न कर दिया। उस शान्त समय में, उस शून्य प्रदेश में, उस शान्त सरोवर के ऊपरी भाग पर वे प्रशान्तात्मा ऐसे सुन्दर स्वरूप, ऐसे तप्त सुवर्ण वर्ण और मनोहर दिखाई देते थे मानो सागर में सूर्य उदय हो रहा है।"

—दयानन्द प्रकाश पृ० ५४९.

—दयानन्द जीवन चरित्र पृ० ६७६.

जल तल में समाधि—"काशी में स्वामीजी इस्लाम मत की त्रुटियाँ दिखाया करते थे। इस से कुछ मुसलमान बहुत रुष्ट हो गए थे। एक दिन

महाराज गङ्गा तट पर आसन लगाये बैठे थे। उसी समय दैव योग से मुसलमानों की एक टोली वहां आ निकली। टोली में बहुतों ने पहचान कर कहा "यह वही तो बाबा है जो हमारे मजहब की तौहीन कर रहा था।" उनमें से दो व्यक्ति बहुत आवेश में आ गए। स्वामी जी को उठा कर गंगा में फैंकने लगे। दोनों हाथों से स्वामी जी की दोनों भुजायें कन्धों के पास से दृढ़ता से पकड़ लीं। उन्हें झुलाकर गंगा की धार में फैंकना ही चाहते थे कि स्वामी जी ने अपनी भुजायें सिकड कर शरीर के साथ लगा लीं और बलपूर्वक स्वेच्छा से दोनों यवनों सहित गंगा में कूद गए। कुछ काल तक उन दोनों व्यक्तियों के हाथ शिकञ्जे में कसे रहे। परन्तु नदी में डुबकी लगाते समय महाराज को उन पर दया आ गई। उन्हें मुक्त कर दिया। वे दोनों बड़ी कठिनता से पानी से बाहर निकले। अपने साथियों के साथ हाथ में पत्थर ढेले लिए नदी पर बड़ी देर तक खड़े रहे। कि बाबा सिर उठाये तो उसे मारें। स्वामी जी तो उनकी इच्छा को जानते थे। वे गरिमा सिद्धि के बल पर पानी के तल में पद्मासन लगा कर बैठे रहे।

अन्धेरा हो जाने पर यवन टोली ने समझा बाबा डूब गया। इस लिए वे चले गए। बहुत देर पीछे स्वामी जी जल से निकल कर अपने आसन पर आ विराजे।

—दयानन्द प्रकाश पृ. २१४.

लम्बी समाधि—महाराज कभी-कभी लम्बी समाधि भी लगाया करते थे। (प्रचार काल में भी) अपनी कोठरी के गवाक्ष खोल देते थे। द्वार बन्द करके ध्यान में मग्न हो जाते थे। जहाँ कहीं लम्बी समाधि में अवस्थित होना होता वहाँ एक दिन पहले ही मिलने जुलने वालों को उस दिन के लिए आने से रोक देते। ......बहिर्मुख कर्मचारी वर्ग तो यही समझता कि आज स्वामी जी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। भीतर पड़े आराम करते हैं। चलो छुट्टी मिल गई।

सहजानन्द ऐसी समझ के मनुष्य नहीं थे। उदयपुर में एक बार महाराज ने चौबीस घण्टों की समाधि ली। गुरु देव ने अपने नवीन शिष्य सहजानन्द को यह भेद पहले ही बता दिया था। कह दिया था आप चाहें तो चुपचाप, मौन भाव से खिड़की विशेष द्वारा देख सकते हैं। उनकी स्वीकृति को पा कर सहजानन्द ने तुर्यावस्था अवस्थित और असम्प्रज्ञात समाधिगत गुरु महाराज का उस दिन रात में कई बार दर्शन किया।

उस समय महाराज की काया अकम्प और अचल थी। वे सौन्दर्य-समुच्चय प्रतीत होते थे। उनके मुख मण्डल की कान्ति, मस्तक का तेज, मुद्रा की शोभा और देह की दिव्य दीप्ति अद्भुत और अनुपम दीख पड़ती थी। उनके चारों ओर शान्ति वरस रही थी। उस समय शान्ति रस मूर्तिमान् हो रहा था।

—दयानन्द प्रकाश पृ. ५४६.

(**मगरमच्छ से प्यार तक**—ऋषि दयानन्द अहिंसा सिद्ध महा योगी थे।

कानपुर—गंगा किनारे एक दिन महाराज श्री मौज में जल में लेटे हुए थे। आधा शरीर जल में और आधा जल से वाहर था कि इतने में थोड़ी दूर पर ही एक मगर आ निकला। पण्डित हृदय नारायण के लघु भ्राता उसे देख कर भागे। चिल्लाये "स्वामी जी। मगर निकला है।" परन्तु उन के मुख पर भय की किञ्चन्मात्र रेखा भी दिखाई न दी। वह जैसे पड़े थे, वैसे ही पड़े रहे और वोले "जब हम उसका कुछ नहीं विगाड़ते तो वह भी हमें दुःख न देगा।"

—म. दयानन्द जीवन चरित्र पृ. १५३.

मगरमच्छ से प्यार करने की घटना एक वार आर्य मित्र में छपी थी। जिसे पण्डित रामदत्त जी शुक्ल ने किसी अंग्रेज की डायरी से लिया था। पं. शिव सागर जी उपप्रधान आर्य समाज नैनीताल और मास्टर बहादुर राम जी मन्त्री रामगढ़ ने भी पढ़कर हमें सुनाया था।

गंगा सैकत में रात्रि में ऋषि उन दिनों अवधूत अवस्था में विचरण करते थे। किसी अंग्रेज ने उन की योग ख्याति सुनी। उन की खोज में वह गंगा किनारे ढूंढते २ पहुंच गया। रात हो गयी थी। चान्दनी छिटकी थी। दूर से अंग्रेज ने बालू पर घुटने उठाये किसी व्यक्ति को लेटा देखा। अश्रद्धा हुई। बैठ गया। रहस्य जानने के लिये बैठ कर सरकने लगा। जब कुछ पास पहुंचा तो योगीवर उछल पड़े। मगर-मच्छ उन के पेट से मुख हटा गंगा की धारा की ओर जा रहा था।

योगीराज को उछलना इस लिये पड़ा कि यदि लौटते मगर की पूंछ से घाव पड जाता तो वह जानते थे उस का उपचार नहीं। अंग्रेज चकित हो गया। पास जा पग छूकर क्षमा मांगी। यह लिखित घटना लण्डन में अंग्रेज की डायरी में और आर्य मित्र की पुरानी फाइल में विद्यमान है।

दो वर्ष पूर्व मृत्यु का ज्ञान था—'थियासोफिस्ट' ने योगीराज ऋषि दयानन्द के परलोक गमन की खबर सुन कर यह लेख प्रकाशित किया था—

"हमारे पत्र प्रेरक आश्चर्य में हैं कि क्या स्वामी दयानन्द जैसे योगी को, जिसमें योग-विद्या की शक्तियां विद्यमान थीं, यह बात विदित न थी कि उनकी मृत्यु से भारत वर्ष को बड़ी हानि पहुंचेगी। क्या वह योगी नहीं थे ? क्या वह महर्षि नहीं थे ?

हम शपथ पूर्वक कहते हैं, कि स्वामी जी को अपनी मृत्यु का ज्ञान दो वर्ष पहले ही था। उन के अन्तिम वसीयतनामे की दो प्रतिलिपि जो कि उन्होंने कर्नल अलकाट और मुझ सम्पादक के पास भेजीं (ये दो प्रतिलिपियां हमारे पास उन के पूर्व मित्रभाव का स्मारक हैं) इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। उन्होंने मेरठ में हमें कई बार कहा था कि हम १८८४ को नहीं देखेंगे।"

—मोनियर विलियम्स ने 'एथिनियम' पत्र में २३ अक्टूबर १८८० को लेख में लिखा था—"जब मैं बम्बई में था तो मैंने प्रशंसित स्वामी को आर्य समाज उत्सव में धर्म विषय पर उपदेश देते सुना था।

—म. द. जी. च० पृ० ६६५.

"स्वामी जी से कहा—आप योरुप जाने का संकल्प करें तो व्यय भार मैं अपने ऊपर लेता हूं।" स्वामी जी ने कहा—"बिना अंग्रेजी सीखे वहां जाना व्यर्थ है। आयु बहुत अधिक शेष नहीं है। योरुप जाना नहीं बन सकता"।

—वहीं. पृ. ६६७.

अतीतानागत ज्ञान—पटना की घटना—नार्मल स्कूल का विद्यार्थी राजनाथ तिवारी ने अनुनय विनय कर महाराज श्री की सेवा में रहने की अनुमति ले ली। डिपटी सोहन लाल ने उस के भाग्य को बहुत सराहा। बुला कर कहा स्वामी जी के लिये दूध और मिश्री ले जाओ। स्वामी जी का स्थान २॥ कोश था। वह अन्धेरे में जाने से डरता था। पण्डित जी ने जाने के लिए बाध्य किया। मार्ग में उसे बहुत डर लगा। वर्षा हो रही थी। सड़क के दोनों ओर पानी था। सड़क के बीच में सर्प पड़ा था। पीछे लौटना चाहा। मुड़ा तो उधर भी सर्प था। बहुत घबराया। खड़े रहने में भी भय था। आगे बढ़ने में भी। उसने आगे बढ़ने

का ही निश्चय किया। सर्प के पास पहुंचा तो आंखें बन्द कर के छलांग मार कर ऊपर से कूद गया। किसी प्रकार दम ले जिवा कर स्वामी जी के पास पहुंचा।

स्वामी जी बैठे हुए थे। बाग के कुछ माली भी पास में बैठे हुए थे। स्वामी जी ने देखते ही कहा—"क्या तू मार्ग में डरा था। क्या तूने सर्प देखे थे"। राजनाथ को बड़ा आश्चर्य हुआ।

—महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र पृ. २१६.

भागलपुर—एक अग्रवाल स्वामी जी के लिए अन्नादि और दूध भिजवाने लगा। दो दिन तक तो महाराज ने ग्रहण किया परन्तु तीसरे दिन यह कह कर कि "हमें स्वार्थ का भोजन नहीं चाहिये, हम ईश्वर नहीं हैं, जो तुम्हें पुत्र दें और तुम्हारा अन्न खायें" उस को मना कर दिया।

पीछे ज्ञात हुआ कि वह पुत्र हीन था। उसे पुत्र की बड़ी कामना थी। इसी उद्देश्य से वह स्वामी जी के लिये अन्नादि भिजवाया करता था।

—स्वामी जी ने राजनाथ से जब कि वह रसोई बना रहा था कहा कि 'तेरा पिता आ गया'। हमने तुम से पहले ही कहा था कि आज्ञा लेकर आओ परन्तु तुमने न माना और उन्हें कष्ट हुआ।

वह रसोई के बाहर आया परन्तु उसके पिता का कहीं पता न था। आध घण्टे के पश्चात् उस का पिता सचमुच आ गया।

कलकत्ता—कहते हैं कि जब बाबू केशव चन्द्र सेन प्रथम बार स्वामी जी से मिले और बात चीत की तो उन्होंने स्वामी जी को अपना परिचय नहीं दिया था। बात चीत की समाप्ति पर केशव बाबू बोले—

केशव॰ "आप बाबू केशवचन्द्र से मिले हैं ?"

दया॰ "हां मिला हूं।"

केशव॰ "परन्तु वे तो यहां थे नहीं।"

दया॰ "मैं अवश्य मिला हूं।"

केशव॰ "जब वे कलकत्ते में थे ही नहीं, कैसे मिले ?"

दया॰ "आप ही केशव चन्द्र सेन हैं।"

केशवबाबू चकित हुए। स्वामी जी के श्रद्धा सूत्र में बद्ध हो गये।

—महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र पृ० २२६.

अमृतसर—एक दिन स्वामी जी महाराज अपने निवास स्थान के एक कमरे में बैठे पण्डितों को वेद भाष्य लिखा रहे थे। बीच में उठ खड़े हुए और कर्मचारियों से कहने लगे—"पुस्तकादि सभी उपकरण, झटपट इस कमरे से बाहर निकाल दो।"

कर्मचारियों ने आज्ञा का पालन तो किया पर वे मन ही मन यह कहते रहे "स्वामी जी ने यह कष्ट व्यर्थ ही दिया।" जब सारे उपकरण दूसरे कमरे में पहुंच गए तो प्रथम कमरे का छत धड़ाम से भूमि पर गिर पड़ी। उस समय कर्मचारियों को महाराज के अनागत ज्ञान का परिचय विस्मय के साथ हुआ। —वहीं, पृ० ३४६.

भूतजयी—स्वामी जी एक समय उपदेश दे रहे थे। उस समय एक ओर से घोर आन्धी, धूलि राशि भूतल आकाश को एकाकार करती उमडी चली आती दिखाई दी। पवन भी प्रचण्ड रूप धारण करने लगा। सत्संगी चलायमान होने लगे। उठने के लिए दायें बायें झांकने लगे।

उस समय महाराज ने मेज पर करतल प्रहार कर उच्च स्वर से कहा—"धैर्य रखिये। हिलिये नहीं। यहां आन्धी नहीं आयगी।" महाराज श्री के कथन पर लोग शान्त हो गए। सचमुच आन्धी भी वहां नहीं आयी।

—वहीं, पृ० ३४६

—मुनशी सेवाराम उन दिनों मेरठ में नहर के जिलेदार थे। एक दिन उन्होंने महाराज से कहा कि मैं नहर का डिप्टी मैजिस्ट्रेट हो जाऊं तो पहले मास का वेतन वेद भाष्य की सहायता में दूंगा। उसके कुछ काल पश्चात् उन्हें वह पद प्राप्त हो गया। उन्होंने अभी यह समाचार किसी से न कहा था, कि महाराज का एक पत्र उनके पास आया, जिसमें उन्हें बधाई दी गयी थी और उनकी प्रतिज्ञा याद दिलाई गई थी।

—महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र पृ० ५०२.

गढ़मुक्तेश्वर—सती की मढ़ी—एक दिन एक मनुष्य ने आकर स्वामी जी से प्रश्न किया—'मेरा एक मित्र घर से कहीं चला गया है। उसका पता नहीं मिलता'। स्वामी जी ने हाथ से इशारा किया। जो पण्डित वहां बैठे थे, उन्होंने बताया कि कहते हैं रामेश्वर की ओर गया है।

एक दिन एक पण्डित स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने आया। वह अपना वक्तव्य एक कागज पर लिख लाया और उन्हें सुनाने लगा। स्वामी जी ने कहा—"क्या अपने पुत्र का लगन पत्र लाये हो। यह शब्द

सुनकर वह इतना घबराया कि फिर एक शब्द भी उसके मुंह से न निकला। बात सच्ची थी।

—म० द० जी० च० पृ० १०४.

मेरठ—शिव लाल रस्तोगी स्वामी जी के बड़े भक्त थे। एक दिन उनके पास जा रहे थे। मार्ग में उन्हें एक सर्प मिला। जब श्री सेवा में पहुंचे तो पहला प्रश्न स्वामी जी ने उनसे यह किया, "क्या मार्ग में सर्प देखा था।"

"जब वह चलने लगे तो महाराज ने कहा छाता ले लिया होता वर्षा होने पर भीगने से बच जाते।"

उस समय शिवलाल को वर्षा का कोई चिन्ह दिखाई न देता था। परन्तु मार्ग में इतनी वर्षा हुई कि घर पहूंचते पहुंचते वह खूब भीग गए।

—म० द० जी० च० पृ० ६२३.

—पं० आदित्य नारायण ने भी महाराज से उपासना में मन लगाने की विधि पूछी। महाराज ने उनसे कहा—"यम नियम का सेवन करो।" उन्होंने दूसरी, तीसरी बार भी इसी प्रश्न को किया। महाराज ने हर बार यही उत्तर दिया। पण्डित जी इस पर कुछ चिढ़े कि हमारा आना व्यर्थ हुआ। फिर उन्होंने सोचा, महाराज के इस उत्तर का क्या कारण है। उन्हें स्पष्ट ज्ञात हो गया। वह एक मुकदमे में झूठी साक्षी देकर आए थे। फिर भी देने वाले थे। बस यही कारण इतना बल देने का था। महाराज यह वृत्त अपनी योग विभूति से जान गए थे।

—म० द० जी० च० पृ० ६६२.

जयपुर—एक दिन महाराणा तथा सहजानन्द श्री सेवा में उपस्थित थे। वार्तालाप हो रहा था। महाराज ने कहा कि 'पं० सुन्दर लाल जी आ रहे हैं; यदि पहले से सूचना दे देते तो यान का उचित प्रबन्ध हो जाता।'

महाराणा ने इस पर कहा—'यान का प्रबन्ध अब भी हो सकता है।'

महाराज बोले—'अब तो वह बैल गाड़ी में आ रहे हैं। उसका एक बैल श्वेत है, और एक के शरीर पर लाल धब्बे हैं। बस कल यहाँ पहुंच जायेंगे।'

अगले दिन पं० सुन्दर लाल उदय पुर पहुंच गए और महाराज का कथन अक्षरशः सत्य निकला। —म० द० जी० च० पृ० ६७६.

ऐसी घटनाओं से जीवन चरित्र भरा पड़ा है।

परकाया प्रवेश:—**मेरठ**—एक दिन कर्नल ने स्वामी जी से कहा उन्हें और मैडम को—"इस बात में शंका है कि स्वामी शंकराचार्य ने अपनी आत्मा को एक राजा के शरीर में जो उसी दिन मरा था प्रविष्ट कर दिया था।"

स्वामी जी ने कहा—"यह विचित्र बात है कि मैडम के समान प्रवीण व्यक्ति को इस विषय में सन्देह हो।"

उन्होंने फिर कहा—"मैं प्रथम कोटि का योगी नहीं हूं। केवल मध्यम कोटि का हूं। परन्तु मैं अपनी चेतना शक्ति को शरीर के किसी भाग में केन्द्रित कर सकता हूं। अर्थात् उस भाग को छोड़कर मेरे शरीर के अन्य सब भाग मृतवत् हो जायेंगे। यदि आप यह दृश्य देखना चाहें तो मैं आपको दिखा सकता हूं। जब कि मैं एक मध्यम कोटि का योगी इतना कर सकता हूं तो एक उच्च कोटि का योगी इससे एक पग आगे बढ़कर अपने आत्मा को दूसरे शरीर में प्रविष्ट कर सकता है।"

—म० द० जी० च० पृ० ६१८.

ऋतंभरा प्रज्ञ—"मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेकर पूर्व मीमाँसा पर्यन्त अनुमान लगभग तीन हजार ग्रन्थों को मानता हूं"। —भ्रान्ति निवारण

यह शब्द बतला रहे हैं कि उनका बोध कितना विशाल और गम्भीर था। जब वे तीन हजार प्रामाणिक ग्रन्थ मानते हैं तो आश्चर्य नहीं उन्होंने उससे दुगुने ग्रन्थ पढ़े हों।

—मास्टर आत्माराम जी—आर्यधर्मेन्द्र जीवन पृ० २१८

—स्वामी जी की धारणा शक्ति अपूर्व थी। उन्होंने एक बार पं० भगवान् वल्लभ से सुश्रुत संहिता मंगवा कर देखी और एक दो दिन में ही उस पर इतना अधिकार प्राप्त कर लिया कि प्रसंग उठने पर वाक्य उद्धृत करने लगे। पृ० २०२.

(सुश्रुत संहिता हजारों पृष्ठ का ग्रन्थ है। सं०)

गुजरात—महाराज वेद भाष्य के कार्य में व्यापृत रहते थे। वह पण्डितों को वेद भाष्य लिखाया करते थे। उनके हाथ में कोई पुस्तक नहीं रहती थी। फिर वह इतनी शीघ्रता से भाष्य लिखाते थे। लेखकों को

लिखने से अवकाश नहीं मिलता था। उन्हें वेद कण्ठस्थ थे। —पृ० ४६१.

एक दिन एक उच्च शिक्षा प्राप्त बङ्गाली दार्शनिक से महाराज का वार्तालाप हुआ। वह महाराज की दार्शनिक विद्वत्ता से परम सन्तुष्ट हुआ। उसने लोगों के पूछने पर स्पष्ट कह दिया—"स्वामी जी तो ज्ञान की अगाध गङ्गा हैं। विद्या के अथाह समुद्र हैं। मैं तो उनके सामने कुछ भी नहीं जानता।'
—पृ० ४६५.

—१६०८ में चरिताभिधान—डिकशनरी आटोवायोग्राफी एण्ड माइथालोजी (प्रकाशित सन् १६११, शकाब्द १८३३, २ संकरण)

बंगला में— पृ० २६३५ पर छपा है—

"**दयानन्द सरस्वती**—१८६६ खीष्टाब्दे A. D. नवम्बर कार्तिक शुक्ला द्वादशी। महादेवेर त्रिशूल रक्षित—वाराणासी धामे मूर्तिपूजा-समर्थनेर निमित्त एक महासभा हइया। ऐयि सभाये काशीर महाराज सभापतीर आसन ग्रहण करेन। एयि सभाये दयानन्द सरस्वती सहित काशी पण्डित-गणेर विचार हइया।[1] एयि विचारे काशीर पण्डितगण अनेक प्रश्नेर उत्तर दिते पारेन नाई। अवशेषे गोल माल करिया, सभा भंग करेन। पण्डित गण कोलाहल करिया। वोलेन जइये—'दयानन्द पराजित होइया छेन।' एयि विचार विषये विभिन्न मत वाहिर है। **ताकि देखा जाये पण्डित गण विचारे पराजित होया छीलेन**। एवं विचार नीति असम्मानित करिया दयानन्देर **अमूलक पराजय** वार्ता घोषणा करि छीलेन। इहार पर जइयता वार काशी ते गय्या छीलेन तत वारी पण्डित गण के आह्वान करिया छीलेन। किन्तु केहीय साहस करिया विचारे प्रवृत्त हन्न नाई। अतः परतनि कलिकाताये आगमन करीन। ऐर वाने तेनि वैदिक धर्मे प्रवृत्त होई लन।"

लेखक—उपेन्द्र चन्द्र मुखोपाध्याय, ढाका नार्मल स्कूल के शिक्षक।

.........१ "इस काशीशास्त्रार्थ के विषय में विभिन्न मत नहीं हैं उससे देखा जाता है कि पण्डित लोग विचार में (शास्त्रार्थ में) पराजित हो गए थे और विचार विनिमय को असम्मानित करके दयानन्द के भित्तिहीन—आधार हीन पराजय के सम्वाद की घोषणा की थी। इसके बाद दयानन्द जितनी वार काशी मे आए थे उतनी बार ही पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया था। पर कोई भी शास्त्रार्थ में प्रवृत्त नहीं हुए थे।.........इत्यादि"

अंग्रेजी पत्र:—बंगाली कलकत्ता, ने भी लिखा था—

"He (Dayananda) stands forth as a rligious teacher of surpassing power and earnestness. He was a yogi, an ascetic who had abjured the world, but he was gifted with a practical sagacity which few men of the world could pretend to possess."

—स्वामी दयानन्द सरस्वती कोई साधारण कोटि के मनुष्यों में से नहीं थे। धर्मोपदेश करने में उन की शक्ति और उत्साहादिक गुणों में वह अद्वितीय थे। यद्यपि जन्म से उन्होंने इस असार संसार का परित्याग कर दिया था। और वे पूर्ण योगी थे, तथापि जैसा सर्वोत्तम ज्ञान उन में देखने में आया वैसा कदाचित् किसी अन्य में देखने में आवे।"

महाराज का मनोबल—रति राम नामी एक पहलवान था जिसे अपने बल पर बहुत घमण्ड था। एक दिन वह महाराज के स्थल पर आया। महाराज को देख कर तिरस्कार पूर्वक बोला—'अरे यह बावा तो बड़ा हृष्ट पुष्ट है।'

महाराज ने उत्तर में कुछ न कहा परन्तु उस पर अपने नेत्रों की ज्योति कुछ इस प्रकार डाली कि उसका सारा घमण्ड चूर चूर हो गया। उस पर ऐसा आतंक छाया कि वह श्री चरणों में लोटता हुआ दिखाई दिया और हाथ जोड़कर अपने अशिष्ट व्यवहार के लिए क्षमा प्रार्थी हुआ।

—म. द. जी. च. पृ० ११३.

कर्णवास—कर्ण सिंह बड़ गूजर क्षत्रिय थे। जमीनदार और रईस थे। उपदेश में पहुँचे। महाराज को प्रणाम कर के बोले—

'हम कहां बैठें?'

'जहां आप की इच्छा हो।'

(घमण्ड से) 'हम तो जहां आप बैठे हैं वहां बैठेंगे।'

(शीतल पाटी पर एक ओर हट कर)— 'आइये, बैठिये।'

'आप गंगा को नहीं मानते?'

'गंगा जितनी है उतनी मानते हैं।'

'कितनी है?'

'हम संन्यासियों के लिये तो कमण्डलु भर है, क्योंकि हमारे पास कोई अन्य पात्र नहीं।'

कर्ण सिंह गंगा की स्तुति में कुछ श्लोक पढ़ता है।

स्वामी जी—'यह बात तुम्हारी गप्प है। यह तो जल है। जल से मोक्ष नहीं होता। मोक्ष तो कर्मों से होता है।'

कर्णसिह—'हमारे यहां राम लीला होती है वहां चलिये।'

स्वामी जी—'तुम कैसे क्षत्रिय हो, महा पुरुषों का स्वांग बनाकर नचाते हो। यदि कोई तुम्हारे पुरुषाओं का स्वाँग बना कर नचावे तो तुमको कैसा बुरा लगे। (उसके ललाट पर चक्राङ्कितों का तिलक देखकर 'तुम क्षत्रिय हो'। तुम ने अपने मस्तक पर भिखारियों का तिलक क्यों लगाया है और भुजायें क्यों दग्घ की हैं।'

कर्णसिह—(क्रोध में भरकर) हमारा परम मत है, यदि तुमने उस का खण्डन किया तो हम बुरी तरह पेश आयेंगे।

स्वामी जी शान्त भाव से खण्डन करते रहे।

कर्णसिह को खण्डन सुनकर आग लग गई। उसने म्यान से तलवार निकाल ली।

स्वामीजी—(कुछ भी भय न करते हुए) 'यदि सत्य कहने से सिर कटता है, तो तुम्हें अधिकार है काट लो। यदि शस्त्रार्थ करना है तो जयपुर आदिके राजाओं से लडो। शास्त्रार्थ करना है तो अपने गुरु रंगाचार्य को वृन्दावन से बुलवा लो और प्रतिज्ञा लिखा लो कि यदि वह हार जाय तो अपना मत छोड़ दे।'

कर्णसिह—(क्रोध में)'महाराज रंगाचार्य के सामने तू कीड़े के तुल्य है, तुझ जैसे उसके आगे जूतियां उठाते हैं।'

स्वामी जी—(केवल इतना ही कहा) 'रंगाचारी की मेरे सामने क्या गति है।'

कर्णसिह महाराज को इसी प्रकार गालियां देने लगा। महाराज पद्मा-सन लगाये सुनते और हँसते रहे। कहते हैं उसने महाराज पर तलवार चलाई। तब महाराज ने गरज कर उसके हाथ से तलवार छीन ली। कहा 'कहे तो तेरे शरीर में घूंस दूं' और पृथिवी पर टेक कर तोड़ दी। शान्त रहे।

किशन सिह आदि भक्त खड़े हो गए। कर्णसिह को फटकारा। वह चला गया। लोगों ने थाने में रिपोर्ट कराने को कहा। महाराज ने कहा

—'इतना ही पर्याप्त है। बुद्धिमान होगा तो फिर ऐसा न करेगा।' महाराज पूर्ववत् शान्ति और मुस्कान के साथ उपदेश करने लगे, मानो कोई घटना हुई न थी।

प्राणों पर आक्रमण होने के समय भी शान्त रहना, प्राण घातक पर भी क्रोध न करना, अपकार के बदले अपकार न करना, द्वेष न रखना। दयानन्द से योगी, दायनन्द से दयालु का ही काम था।'—(यह भावना व्यक्त की है देवेन्द्रबाबू ने जो आर्य समाजी न थे।) सं०

—म० द० जी० च० पृ० १२४.

घर जाते ही कर्णसिंह का एक घोड़ा बहुत अच्छा, जिसे वह बहुत प्यार करते थे, अकस्मात् रोग से मर गया। वर्षा के कारण रामलीला भी पूरी न हो सकी। रावण तक न जल सका। कर्णसिंह के एक शूल उठा। बहुत ही पीड़ा हुई। एक पण्डित ने उससे कहा यह सब तुम्हारे एक महात्मा को दुर्वाक्य कहने का परिणाम है।

कर्णसिंह ने फिर गुण्डों से कहा। उनके मना कर देने पर, सेवकों को स्वामी जी को मारने के लिए भेजा। नौकर तीन बार लौटे। साहस न पड़ा। अन्त में योगी की हुंकार से वहीं औंधे मुंह गिर पड़े। हुंकार सुन ग्राम वाले जाग उठे। ग्राम वालों ने कर्णसिंह को मार देने की ठानी। श्वसुर ने उसको गांव से डेरा डण्डा संभाल भगा दिया।

कर्णसिंह घर जाते ही फिर बीमार हो गया। विक्षिप्त हो गया। एक बड़ा मुकदमा भी हार गया। अपने मत के विरुद्ध मांस मदिरा खाने पीने लगा। उसकी बड़ी दुर्दशा हुई। —देवेन्द्रबाबू। —वहीं

क्षमाशीलता—मुन्शी हरदेव गोविन्द एक कट्टर हिन्दू थे। वे उद्धत और झगड़ालू प्रकृति के थे। एक बार वह फौजी गोरों से भी लड़ पड़े थे। वृन्दावन के जंगल में शिकार खेलने आये। एक दिन उन्होंने दुष्टता वश मुठ्ठी में धूल भर कर स्वामी जी के ऊपर डाल दी। स्वामी जी ने कुछ भी नहीं कहा।

—म० द० जी० च० पृ० २६३.

—एक दिन एक मनुष्य ने महाराज के ईन्टें मारीं परन्तु वह उनके लगी नहीं। जेल के क्लर्क एक बंगाली सज्जन ने पुलिस मैंन को उसके पीछे भेजा। वह उसे पकड़ लाया। उसने ईन्टें फैंकने से नकार किया। महा-

राज ने उसे क्षमा किया। ऐसे अवसरों को महाराज हंसकर टाल देते थे। जो ऐसे दुष्टों को धमकाना चाहते थे, उन से कह दिया करते थे—'ऐसे लोगों पर क्षमा करके उन्हें जाने दो। इनकी चिकित्सा यही है कि इन्हें सदुपदेश दिया जाय। हमारे साथ यह कोई नई बात नहीं।'

—म० द० जी० च० पृ० ४५६

अजमेर—एक दिन महाराज श्री ने इमदाद हुसेन से कहा कि एक दिन मैं शौच करने बैठा हुआ था। एक मनुष्य नंगी तलवार लिए मेरे पीछे आ खड़ा हुआ। मैंने उससे कहा कि मैं शौच से निवृत्त हो लूं तब मेरा सिर काट डालना। इस पर वह राजी हो गया। जब मैं निवृत्त हो चुका तब मैंने अपनी गर्दन उसके आगे झुका दी। इससे वह ऐसा प्रभावित हुआ कि बिना कुछ कहे ही मुझे छोड़ कर चला गया।

—म० द० जी० च० पृ० ६३६

—एक दिन स्वामी जी व्याख्यान दे रहे थे। कुछ धूर्तों ने एक कलवार और एक कसाई को भेजा, उन्होंने जाकर गुल मचाकर स्वामी जी से कहना आरम्भ किया, "हमारे शराब और मांस के दाम दे दीजिये।"

स्वामी जी ने हंस कर कहा—"बहुत अच्छा! व्याख्यान के पश्चात् तुम्हारा हिसाब भी दूंगा।"

व्याख्यान के पश्चात् स्वामी जी ने एक हाथ से एक का और दूसरे हाथ से दूसरे का सिर पकड़ कर कहा—"बतलाओ तुम्हारे कितने कितने दाम हैं।"

जब उन्होंने देखा कि स्वामी जी उनके सिरों को टकरा कर कचूमर निकाल देंगे तो हाथ जोड़कर उन्होंने क्षमा मांगी। कहा हमें अमुक पुरुष ने बहका कर भेजा था। दयालु दयानन्द तो अपने बुरे से बुरे शत्रु से भी बदला लेना नहीं चाहते थे। उन्हें तुरन्त क्षमा कर दिया।

—म. द. जी. च. पृ. २६६

अपूर्व बल—जोधपुर नगर में एक पहलवान रहता था जिसे अपने बल पर बड़ा घमण्ड था। वह अकेला ही रहट को चला कर अपने स्नान करने के लिये हौज भरा करता था। वह और अन्य लोग भी यही समझते थे कि अन्य कोई इस प्रकार हौज नहीं भर सकता। घटना वश

महाराज भी नगर में पहुंचे। महाराज का नियम था, वह प्रातःकाल नगर से बाहर भ्रमणार्थ जाया करते थे। एक दिन महाराज ने भी उसे हौज भरते देख लिया। उस के पश्चात् एक दिन वायु सेवन के लिए महाराज उधर से होकर गुजरे तो उनके जी में आई कि हौज को भरें। रहट को चलाकर महाराज ने हौज को भर दिया और वायु सेवनार्थ आगे चले गए।

जब पहलवान आया और उसने हौज भरा हुआ पाया तो उसके आश्चर्य का कुछ ठिकाना न रहा। साधु महाराज के दर्शन करने वहीं बैठ गया। जब आते दिखाई दिये। दौड कर मार्ग रोक लिया। पूछा—"बाबा, हौज तुमने भरा है?" महाराज ने कहा 'हां'! "हौज भर कर थके नही?" महाराज ने उत्तर दिया—"थकना तो दूर, हमारा व्यायाम तक पूरा न हुआ। इसीलिये टहलने के लिये आगे जाना पड़ा।" पहलवान हक्का बक्का रह गया।

—म. द. जी. च. पृ. ७०२.

—एक बार गंगा तट पर विचरते हुए स्वामी जी एक सघन वन में जा निकले। वहां उन्हें सामने से एक सिंह आता हुआ दिखाई दिया। आप सीधा चलते रहे। जब वह उस सिंह के निकट पहुंचे तो उसने उनकी ओर देख कर मुंह फेर लिया और जंगल में घुस गया।

—म. द. जी. च. पृ. ४२१.

—जंगल में मार्ग का उन्हें कोई निदर्शन तक नहीं मिला। सुतराम उस जंगल भूमि में खडे खडे यह सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिये। एक आकस्मिक और भारी विपद् उपस्थित हो गई। 'एक बहुत बड़ा काला रीछ मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। वह गरज कर अपनी पिछली टांगों पर खडा हो गया और मुझे खाने के लिये मुख खोला। मैं उस समय कुछ क्षण तक स्पन्द-हीन अवस्था में खड़ा रहा। और अपनी लाठी उस के मुंह पर मारने को उठाई। उसे देख कर न जाने किस कारण से वह रीछ डर कर भाग गया।'

कर्नल अलकाट और मैडम ब्लेवैटस्की आदि थियासोफिकल सोसाइटी के सदस्य इस घटना से दयानन्द को योगी मानते हैं। वह कहते हैं क्या योग की शक्ति का प्रयोग किये बिना दयानन्द एक लकड़ी से बड़े भारी रीछ को जो आक्रमण करने पर उद्यत हो, भगा सकते थे? इस में

सन्देह नहीं, इस घटना से दयानन्द को योग शक्ति का परिचय मिलता है।
—म. द. जी. च. पृ ५०.

जालन्धर—एक दिन महाराज विक्रम सिंह ने कहा कि सुनते हैं कि ब्रह्मचर्य से बहुत बल बढ़ता है। महाराज ने कहा 'यह सत्य है'। सरदार साहब ने कहा—'आप भी तो ब्रह्मचारी हैं परन्तु आप में इतना बल प्रतीत नहीं होता।' महाराज उस समय चुप हो गए। जब सरदार साहब अपनी दो घोड़ों की गाडी पर सवार हुए तो महाराज ने चुपके से जाकर उनकी गाड़ी का पिछला पहिया पकड़ लिया। कोचवान ने घोड़ों को बढ़ाना चाहा, पर वह न बढ़े। उसने चाबुक मारे, घोड़ों ने बहुतेरा बल लगाया, पर टस से मस न हो सके। सरदार साहब ने पीछे मुड़कर देखा तो महाराज को गाड़ी का पहिया पकड़े पाया। महाराज ने मुस्करा कर कहा 'मैंने ब्रह्मचर्य का प्रमाण दे दिया है।'

—म. द. जी. च. पृ. ४३८.

शाप—एक हलवाई पं. चतुर्भुज के बहकाने सिखाने से महाराज से आकर मूर्ति पूजा पर व्यर्थ वितण्डावाद किया करता था। अण्ड वण्ड बका करता था। एक दिन महाराज ने उससे कहा—'तू रोज आकर हमें दिक करता है। हमारा समय नष्ट करता है। ऐसा न किया कर। अन्यथा तेरा अंग भंग हो जावेगा। क्योंकि वेद में मूर्ति पूजा कदापि नहीं है। ऐसा करना महा पाप है।' पर उसने क्रोध में आकर अपशब्द ही कहे। कहते हैं इस घटना के दस बारह दिन पीछे ही उसे गलित कुष्ठ हो गया और वह उसी से मर गया।

—म. द. जी. च. पृ. ५८९.

इन्द्रिय सिद्धि—शाहपुर में महाराज खस की टट्टी के कमरे में पंखे के नीचे बैठकर वेद भाष्य किया करते थे। टट्टी पर जल छिड़कने के लिए एक हौज था। जिसमें प्रतिदिन कुएं से ताजा जल भर दिया जाता था। एक दिन भृत्य ने असावधानी से वा प्रमाद से हौज को साफ न किया और उसमें कुछ बासी जल पड़ा रहा था। उसी में ताजा जल भर कर टट्टी पर छिड़क दिया। इसके कुछ ही देर बाद महाराज ने यह बात जान ली। उन्होंने तत्काल वेद भाष्य का कार्य बन्द कर दिया और कहा उस जल को फेंक दो, हौज साफ कर उसमें ताजा जल भरो और जब तक हौज साफ होकर उस में ताजा जल भरकर टट्टी पर न छिड़का गया वेद भाष्य का कार्य न किया

घीसा लाल चकित हो गया। ऐसी सूक्ष्म योग सामर्थ्य योगीराज में थी···
—म. द. जी. च. पृ० ६६१.

इस प्रकार का योगसामर्थ्य योगीराज दयानन्द में था। महर्षि दयानन्द जीवन चरित्र के लेखक बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय हैं। प्रकाशक ने अपने वक्तव्य में लिखा है "इन्होंने (देवेन्द्र बाबू ने) आर्य समाजी न होते हुए भी किस प्रकार ऋषि दयानन्द के ऊपर अपना सर्वस्व अर्पन कर दिया।"

भूमिका में देवेन्द्र बाबू ने लिखा है—'हम यद्यपि आर्य समाज के प्रति श्रद्धा का भाव रखते हैं तथापि इस बात के कहने से नहीं रुक सकते कि आर्य समाज का जीवन नितान्त निर्बल है। ऐतिहासिक दृष्टि से नितान्त क्षीण है, उसमें किसी विषय को विचार की तथा विश्लेषण पूर्ण दृष्टि से देखने की शक्ति अत्यल्प है।" —सन् १६१६ में लिखित

हमने एक निष्पक्ष अन्य विश्वासी के उद्धरण ऋषि जीवन सम्बन्ध में दिये हैं, जिससे अविश्वासी तार्किकों को इस अज्ञात जीवनी आत्म चरित्र के ऋषि विश्लेषित, अनुभूत योग प्रकरण पर और ऋषि की उपलब्ध सिद्धियों पर विश्वास हो।

अन्य ३८ योग सिद्धियों का इस आत्मचरित्र में ऋषि ने इस प्रकार उल्लेख किया है—

"जो जो शक्तियां मेरे अनुभव में आयी थीं (गुरुओं के सामने) उनका वर्णन किया था—

१. भूत और भविष्यत् का ज्ञान।
२. सब प्राणियों की भाषाओं का ज्ञान।
३. पूर्व जन्मों का स्मरण।
४. दूसरों के चित्तों का ज्ञान।
५. अन्तर्धान होना।
६. अपने रूप, शब्द, स्पर्श आदि को भी अन्तर्हित करना।
७. मृत्यु काल को जान लेना।
८. बलवान् पशुओं के अनुरुप बल प्राप्त होना।
९. सूक्ष्म अन्तराल में आवृत और अति दूरवर्ती वस्तुओं को देखना।
१०. लोकलोकान्तर भुवनों का जानना।

११. नक्षत्रों को जानना। १२. नक्षत्रों की गतियों को जानना।

१३. शरीर और मन को स्थिर करना। १४. सिद्धपुरुषों को देखना और उनसे बात चीत करना।

१५. वैराग्य लाभ सहायक ज्ञान का प्राप्त करना। १६. स्वचित्त और परचित्त का ज्ञान।

१७. आत्म ज्ञान। १८. दिव्य ज्ञान या सूक्ष्म ज्ञान लाभ करना।

१९. चित्त का दूसरे शरीर में प्रवेश करना। २०. शरीर का अत्यन्त हलका करना।

२१. इच्छा मृत्यु। २१. शरीर को ब्रह्म तेज से उज्ज्वल करना।

२३. सूक्ष्म इन्द्रिय-शक्ति लाभ। २४. आकाश-गमन की शक्ति।

२५. चित्त के आवरण का नाश। २६. महाभूतों का वशीभूत करना।

२७. अष्ट महासिद्धियां— अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, महिमा, प्रकाम्य, वशित्व, ईशित्व और सत्यसंकल्पता। २८. काय सम्पत्—रूप, लावण्य, वल, दृढ़ता।

२९. शरीर का अटूट भाव। ३०. इन्द्रिय संयम।

३१. अव्याहत गति शक्ति लाभ। ३२. पुरुष और प्राकृतिक भेद ज्ञान

३३. वन्धन से मुक्ति। ३४. अलौकिक विवेक ज्ञान।

३५. सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तु ज्ञान। ३६. सर्व वस्तुओं के भेद ज्ञान्।

३७. विवेक ज्ञान, पुरुष प्रकृति भेद ज्ञान। ३८. कैवल्य लाभ।

गुरुओं से मैंने कहा था 'इन सब विभूतियों में से अधिकाँश विभूतियां मेरे अनुभव में आ गई हैं।' किसी गुरु ने क्षुधा पिपासा के विषय में पूछा। मैंने कहा था क्षुधा पिपासा मेरे लिये समस्या के रूप में नहीं है। अब मैं अन्न जल के विना ही महीनों रह सकता हूं।''

''इसी प्रकार और भी बहुत विभूतियों के बारे में मेरे अनुभव हैं।''

पर योगीराज दयानन्द सिद्धियां दिखाते नहीं थे। देखो योगावतरण, पृ. ३७।

ऋषि लिखते हैं—"हम इतना वड़ा कार्य्य योग सिद्धि के विना नहीं कर रहे हैं।" —म० द० जी० च० पृ० ६३९.

—सहजानन्द को महाराज ने संन्यास धर्म और योग विषय की शिक्षा-दीक्षा देकर प्रचार के लिए बाहर भेज दिया। —वहीं पृ० ६७६.

—'वानप्रस्थ में योगाभ्यास, और योगी होकर संन्यास में प्रचार' यही ऋषि ने संस्कार विधि आदि में आदेश दिया है।

यह सब योग सम्बन्धी कुछ घटनायें इस लिये एकत्र की हैं कि ऋषि की न्याईं सत्य वैदिक धर्म का प्रचार करने वाले नवयुवक योग के लिये सन्नद्ध हो सकें। तीसरी वय वाले ऋषि भक्त योगाभ्यास कर सन्यास ले और वैदिक धर्म के प्रचार के योग्य वन सकें। टेपरेकार्डों या फोनोग्राफ के रेकार्डों के समान धनलोलुप गृहस्थ अनार्ष विद्वानों से प्रचार कार्य नहीं हो सकता। न ही विद्याशून्य योग पराङ्मुख धनी वर्ग वेद प्रचार कर सकता है। इसी लिये ऋषि दयानन्द ने जो लिखा उसे पढ़कर आचरण में लाने की आवश्यकता है। सिद्ध योग लाभ किये विना केवल गैरिक वस्त्र धारण करने वाले रंगे युवा संन्यासियों से भी योगी का अधूरा काम पूरा न होगा।

—

वेदों में योग उपदेश

हिरण्यगर्भ-प्रजापति-ब्रह्म का योग-उपदेश

ओम्—युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः ।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ।। १ ।।

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे स्वर्ग्याय शक्त्या ।। २ ।।

युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्यतो धिया दिवम् ।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ।। ३ ।।

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो
विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
विहोत्रा दधे वयुनाविदेकऽ इन्
मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ।। ४ ।।

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभि र्विश्लोक एतु पथ्येव सूरः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ।।५।।

यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा
देवस्य महिमानमोजसा ।
यः पार्थिवानि विममे स एतशो
रजाँसि देवः सविता महित्वना ।। ६ ।।

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ।।७।।

इमं नो देव सवित र्यज्ञं प्रणय देवाव्यँ्
सखि विदँ् सत्राजित न्धनजितँ् स्वार्जितम्
ऋचास्तोमँ् समर्धय गायत्रेण रथन्तरं
बृहद् गायत्रवर्त्तनि स्वाहा ।।८।।

—शुक्ल यजुः० अ० ११ । मं० १—८ ।।

योगी दयानन्द का भाष्य—(१) (सविता) ऐश्वर्य का चाहने वाला मनुष्य (तत्त्वाय) परमेश्वर, आत्मा प्रकृति के तत्त्व ज्ञान के लिये (प्रथमम्) पहले (मनः) मन की वृत्तियों-विचारों की तथा (धियः) ज्ञानांश को (युञ्जानः) योगके अभ्यास में लगाता हुआ-समाहित करता हुआ (अग्नेः) परमात्मा के

(ज्योतिः) प्रकाशमय (भर्गः) स्वरूप को (निचाय्य) निश्चित जान के (पृथिव्याः अधि) भूमियों में, चित्त की सब अवस्थाओं में (आभरत्) अच्छे प्रकार धारण करे।

भावार्थ—यो जनो योगं चिकीर्षेत्, सयमादिभिः क्रिया कौशलैश्चान्तःकरणं पवित्रीकृत्य तत्त्वानां विज्ञानाय प्रज्ञां समज्यैतानि गुण कर्म स्वभावती विदित्वोपयुञ्जीत। पुनर्यत् प्रकाशकानाँ सूर्यादीनां प्रकाशकं ब्रह्म अस्ति, तद्विज्ञाय स्वात्मनि निश्चित्य सर्वाणि स्वापर प्रयोजनानि साध्नुयात्॥

—जो मनुष्य योग का ज्ञान करना चाहें, वह यम-नियमों को पूर्णतया पालन करें। तप स्वाध्याय और ईश्वरणिधान से अन्तःकरणो को पवित्र करके तत्त्वों पाँचों भूतों को तत्व से जानने के लिए प्रज्ञालोक को युक्त करें और इन सबको तत्त्वतः जान कर व्युत्थान काल में वैसी अनासक्त हो ही व्यवहार करें। फिर समाधि में सूर्यादि को प्रकाशित करने वाले परब्रह्म को साक्षात् करें। उसको जान आत्मा में उसकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्यापकता का निश्चय करें। अपने और दूसरों के परम प्रयोजन मोक्ष को सिद्ध करें।

सन्ध्या में भी योगिराज दयानन्द ने कहा है—'धर्मार्थ काम मोक्षाणां सद्यः सिद्धि र्भवेन्नः।' धर्म से धन की, धन से तृप्त वासनाओं की और मोक्ष की तत्काल सिद्धि प्राप्त हो अर्थात् सन्ध्या में समाधि लग जावे और चरम मोक्षानन्द उपलब्ध होवे॥ १॥

२—हे योग के इच्छुको! जैसे (वयम्) हम योगी लोग (युक्तेन) समाहित (मनसा) मन से और (शक्त्या) ज्ञान शक्ति से, ज्ञानांश से (देवस्य सवितुः) समग्र संसार को उत्पन्न करने वाले देव के (सवे) ऐश्वर्य में—सर्वाधिष्ठातृत्व स्वरूप में (स्वर्ग्याय) अधिकाधिक तेजोमय स्वरूप को धारण करते हैं वैसे तुम लोग भी प्रकाश को धारण करो॥

भावार्थ—यदि मनुष्याः परमेश्वरस्य सृष्टौ समाहिताः सन्तः योगं तत्त्वविद्यां च यथाशक्ति सेवेरन्, तेषु प्रकाशितात्मानः सन्तो योगम् अभ्यसेयुः, तर्हि सिद्धीः कथं न प्राप्नुयुः॥

—यदि मनुष्य परमेश्वर की सृष्टि में रहते हुए भी समाहित होकर योग का और तत्त्व विद्या—विवेक ख्याति का पूर्ण शक्ति और सामर्थ्य से अभ्यास करें तो उन सब में रहते हुए भी विदेह होकर आत्मदर्शी होते हुए योग का पूर्णता के लिये अभ्यास करें तो योगसिद्धियां क्यों न प्राप्त होंगी॥ २॥

३—(सविता) प्रज्ञा लोकी योगी (युक्त्वाय) परमात्मा में युक्त होकर (धिया) बुद्धि से-अपनी चेतना से (दिवम्) विद्या को-सब पदार्थों के ज्ञान को (स्वः) सुख को—आनन्द को (यतः) प्राप्त करने वाला (बृहत्) बड़े (ज्योतिः) विज्ञान को (करिष्यतः) प्राप्त करेगा। (तान् देवान्) उन दिव्य गुणों को (प्रसुवाति) नया अभ्यासी उत्पन्न करे।

भावार्थ—ये योगम् अभ्यस्यन्ति ते अविद्यादिक्लेशानां निवारकान् शुद्धान् गुणान् जनयितुं शक्नुवन्ति। य उपदेशकाद्योगं प्राप्य एवम् अभ्यसेत् सोऽप्येतान् प्राप्नुयात्।

—जो योगी योग का अभ्यास करते हैं वे अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश-मृत्युभय नामक पाँचों क्लेशों को, अविद्याओं को दूर करते हैं और शुद्ध गुणों को सत्वगुण जनित विवेक ख्याति को उत्पन्न करते हैं।

जो योगोपदेशक योगी सन्न्यासी जनों से योग विद्या को प्राप्त कर इस प्रकार अभ्यास करता है वह भी अविद्याओं को दूर करता है और विवेकख्याति को प्राप्त करता है।

इसका अभिप्राय यह है कि जीव को परमेश्वर की उपासना नित्य (हर घड़ी) करनी उचित है। अर्थात् उपासना-समय में सब मनुष्य अपने मन को उसी में स्थिर करें।

४—(विप्राः) ईश्वरोपासक (होत्राः) मेधावी योगी जन (बृहतः) सबसे बड़े (विपश्चितः) सर्वज्ञ (विप्रस्य) साधक (मनः) मन को (युञ्जते) परमेश्वर में ठीक ठीक युक्त करते हैं, समाहित करते हैं (उत) और अपनी बुद्धि-वृत्ति अर्थात् ज्ञान को (ज्ञानांश को) (युञ्जते) सदा परमेश्वर में स्थिर करते हैं (अर्थात् परमेश्वर का ज्ञान अखण्ड बना रहता है जो) ईश्वर (विदधे) सब जगत् को धारण करता है और उसका विधान करता है (वयुनावित् एक इत्) जो अकेला ही बिना किसी सहायक के सब जीवों के शुभ-अशुभ ज्ञान का विचारों का जानने हारा है। (सवितुः देवस्य) उस रचना करने हारे देव की (मही परिष्टुतिः) बड़ी से बड़ी स्तुति करें। उससे बड़ी किसी दूसरे को नहीं। वही सबका राजा धिराज है। उसी का नाम लें, उसी का ध्यान करें। (मही) दीर्घकाल तक, निरन्तर, बिना व्यवधान के सत्कार पूर्वक करें। श्रद्धा से करें।

भावार्थ—ये युक्ताहाराविहार एकान्ते देशे परमात्मानं युञ्जते, ते तत्वज्ञानं प्राप्य नित्यं सुखं लभन्ते।

—जो योगियों का-सा आहार—जल पर या हवा पर ही रहने वाले होकर एकान्त—बियाबान जंगल प्रदेश में परमात्मा में समाहित होते हैं, लगातार समाहित रहते हैं। वे प्रज्ञालोक द्वारा तत्वज्ञान को जान लेते हैं और शाश्वत सुख को, अखण्ड आनन्द को प्राप्त करते हैं। मही परिष्टुति का यह स्वाभाविक परिणाम है। ४॥

५—(अमृतस्य पुत्राः) हे मोक्ष मार्ग का पालन करने वाले योगी मनुष्यो. (शृण्वन्तु विश्वे) तुम सब सुनो (ये धामानि दिव्यानि आतस्थुः) जो दिव्य मोक्ष सुखों को, समाधि के आनन्द को प्राप्त कर चुके हो जब तुम (पूर्व्यम्) सनातन (ब्रह्म) ब्रह्म को (नमोभिः)सत्य प्रेम भाव से अपने आत्मा को स्थिर करके, नमस्कार कर नाम (ओं) स्मरण कर उपासना करोगे तब मैं तुमको आशीर्वाद दूंगा (श्लोकः) सत्य कीर्ति—सत्य-प्रतिष्ठा होने पर अमोघ वाग् (वां) तुम दोनों योगोपदेशक और योगाधिकारी को (वि एतु) प्राप्त हो। (सूरेः पथ्येव) जैसे परम विद्वान्—ऋतंभरप्रज्ञ को धर्म मार्ग—गुण गुणी ज्ञान प्राप्त होता है (युजे)मैं तुमको उपासना योग में युक्त करता हूं, सन्देह मत करो।

भावार्थ—योगं जिज्ञासुभिराप्ता योगारूढा विद्वाँसः संगन्तव्याः। तत्संगेन योगविधिं विज्ञाय ब्रह्म अभ्यसनीयम्। यथा विद्वत्प्रकाशितो धर्म मार्गः सर्वान् सुखेन प्राप्नोति, तथैव कृतयोगाभ्यासानाम् सङ्गाद् योगविधिः सहजतया प्राप्नोति।

नहि कश्चित् एतत्संगम् अकृत्वा ब्रह्माभ्यासेन विनाऽऽत्मा पवित्रो भूत्वा सर्व सुखम् अश्नुते तस्माद् योगविधिना सहैव सर्वे पर ब्रह्मोपासताम्।

—योग के जिज्ञासुओं को योगारूढ़ विद्वानों की सेवा में जाना चाहिये। उनके संग रह कर, योग विधि को जान कर,ब्रह्म ध्यान का अभ्यास करना चाहिये। जैसे विद्वानों का बताया धर्म मार्ग सबको सुख से मिल जाता है, वैसे ही योगियों की संगति से योग विधि सरलता से मिल जाती है। कोई भी आत्मा योगियों को संग किये विना और ब्रह्माभ्यास के विना पवित्र होकर सर्व-सुख आनन्द को प्राप्त नहीं कर सकता, इसलिये योगविधि के साथ-साथ सब परब्रह्म की उपासना करें॥५॥

६—हे योगी पुरुषो ! (यस्य,देवस्य) जिस देवाधिदेव की [महिमानम्] महिमा को [प्रयाणम्] व्यापकता को (अन्ये देवाः) अन्य विद्वान लोग (अनुययुः) प्राप्त होवें [यः] जो [देवः] देव [ओजसा महित्वना] अपने बल और महिमा से [सविता] सब संसार का निर्माण करता है [पार्थिवानि] पार्थिव सब लोक-लोकान्तरों को आकाश में ही [विममे]

रचा है [स एतशः इत] वही इन को नियम में चला रहा है। यह सब सम्प्रज्ञातसमाधि में प्रत्यक्ष करो।

भावार्थ— ये विद्वासः सर्वस्य जगतोऽन्तरिक्षेऽनन्तबलेन धर्त्तार निर्मातारं सुखप्रदं शुद्धं सर्वशक्तिमन्तमीश्वरम् उपासते त एव सुखयन्ति नेतरे॥

—जो जानकार योगीजन अन्तरिक्ष में अपने अनन्त बल से लोक लोकान्तरों को बनाने वाले, धारण करने वाले, शुद्धस्वरूप, सर्वशक्तिमान् अनन्त सुख देने वाले अनन्त भगवान् की उपासना-योग से उस में बैठते हैं; उन को ही सच्चा सुख मिलता है दूसरों को नहीं। सांसारिक भोगों में सुख नहीं। भगवान् ही अनन्त सुख का भण्डार है। योगाभ्यास से उसी में रमण करना चाहिये॥६॥

७—[देव सवितः] हे सत्यशुद्ध योग विद्या से उपासना करने योग्य परमेश्वरः [नः] हम योगियों के [यज्ञम्] योगयज्ञ को—सुखों को प्राप्त कराने हारे योग व्यवहार को [प्रसुव] उत्पन्न कीजिये [गन्धर्वः] पृथिवी आदि लोक लोकान्तरों के धारक [दिव्यः] दिव्य गुण कर्म स्वभाव वाले [केतुपूः] विज्ञान से पवित्र कराने हारे आप [नः] हमारे [केतम्] ज्ञान को [पुनातु] पवित्र कीजिये, प्रज्ञालोक तक पहुँचा दीजिये जिसके द्वारा प्राप्त ज्ञान अन्य ज्ञानों को फीका कर दे, मन्द करे, विशुद्ध ज्ञान हो सके [वाचस्पतिः] वेद के स्वामिन् [नः] हमारी वाणी को [स्वदतु] स्वादु-फल वाला कर दीजिये, अमोध कर दीजिये, सर्वभूत प्राणियों की वाणी को समझ स्वाद ले सकें।

भावार्थ— ये जना ईर्ष्यादिदोषान् विहाय ईश्वर इव सर्वैः सह सुहृद्भावमाचरन्ति, ते संवर्धितुं शक्नुवन्ति।

—जो पुरुष सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त शुद्ध निर्मल ब्रह्म की उपासना, और योग विद्या की प्राप्ति के लिये उत्कृष्ट प्रयत्नपूर्वक प्रार्थना करते हैं वे सब योग ऐश्वर्यों— योग सिद्धियों को प्राप्त हो, अपने आत्मा को शुद्ध कर सकते हैं। योग विद्या को सिद्ध कर सकते हैं। वे सत्यवादी हो के सब क्रियाओं के फलों को प्राप्त होतेहैं॥७॥

८. हे [सवितः देव] सवितर् देव! [नः] हमारे [इमं यज्ञं] इस योग यज्ञ को (देवा व्यम्] दिव्य सत्त्व गुणका रक्षक, वर्धक, ज्ञापक, [सखिदिवदम्) आप सखा को मिलाने वाला, [सत्राजितम्]सत्य व तीनों तत्त्वों का जय कराने वाले, (धनजितम्] धन आदि अविद्या-भावों पर विजय कराने वाले, [स्वर्जितम्] अनन्त आनन्द दायक[यज्ञम्] योग यज्ञ को[प्रनय]भली प्रकार उत्तमता से आगे बढ़ाइये। [ऋचा]समाधि में

साक्षात् होने वाली ऋचाओं के द्वारा,(स्तोमम्) गुण गरिमामय स्तवन यज्ञ को (समर्धय)भली प्रकार बढ़ाइये, समर्थ कीजिये । (गायत्रेण) तेरे आन्तर गान से(बृहद्रथन्तरं)बड़े योग रथ को बढा ।(गायत्र वर्त्मनि) उपासना मार्ग में-योग मार्ग में(स्वाहा) अपने को मैं अर्पित करता हूं ।

भावार्थ— ये जना ईर्ष्यादिदोषान् विहाय ईश्वरः इव सर्वैः सह सुहृद्भावम् आचरन्ति ते संवर्धितुं शक्नुवन्ति ।

—जो मनुष्य ईर्ष्या द्वेष आदि दोषों को छोड़कर ईश्वर के सामन सब जीवों के साथ मित्रभाव रखते हैं—सांसारिक संग्रह के कारण द्वेष नहीं करते, ईश्वर पुत्रों-आत्माओं से समान भाव से प्रेम करते हैं, वे संपत् को-योगविभूतियों को और उन से भी विरक्त हो परमानन्दमय भगवान् रूप संपत् को प्राप्त होते हैं ।।८।।

उपनिषत् में योगविधान

दूसरे अध्याय के आरम्भ के पांच मन्त्र देकर श्वेताश्वतर ने आगे यह सुन्दर योगोपयोगी मन्त्र दिये हैं :—

अग्निर्यत्राभिमथ्यते, वायुर्यत्राभिरुध्यते ।
सोमो यत्रातिरिच्यते,तत्र संजायते मनः ।६।

सवित्रा प्रसवेन जुषेत ब्रह्म पूर्व्यम् ।
तत्र योनिं कृण्वसे नहि ते पूर्वमक्षिपत् ।७।

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं,
हृदोन्द्रियाणि मनसा संनिवेश्य,
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान्
स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ।८।

प्राणान् प्रपीड्येह संयुक्तचेष्टः
क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत ।
दुष्टाश्वयुक्तं वाहनमेनम्,
विद्वान्मनो धारयेताप्रमत्तः ।९।

समे शुचौ शर्करा वह्नि बालुका
विवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः ।

मनोऽनुकूले न तु चक्षुपीडने
गुहानिवाताश्रयणं प्रयोजयेत् ।१०।

नीहार धूमा कांनिलानलानाम्
खद्योत विद्युत् स्फटिक शशिनाम् ।
एतानि रूपाणि पुरःसराणि,
ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ।११।

पृथिव्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते
पंचात्मके योग गुणे प्रवृत्ते,
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ।१२।

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वम्
वर्णं प्रसादं स्वरसौष्ठवं च ।
गन्धः शुभो मूत्र पुरीषमल्पं
योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ।१३।

यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तम्
तेजोमयं भ्राजते तत्सुधातम्
तद्वात्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही,
एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः ।१४।

यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं
दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत् ।
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धम्
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।१५।

एषो ह देवप्रदिशोऽनुसर्वाः
पूर्वो ह जातः सहगर्भेऽन्तः ।

स एष जातः स जनिष्यमाणः
प्रत्यङ् जनस्तिष्ठति सर्वतोमुखः ।१६।
यो देवोऽग्नौ योऽप्सु
यो विश्वं भुवनमाविवेश ।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु
तस्मै देवाय नमो नमः ।१७।

६. जब परमदेव परमात्मा को घृत की नाईमथ कर निकालने की भावना प्रबल हो जाती है, और श्वास-प्रश्वास की गति वश में हो जाती है, जब धारणा ध्यान की अवस्था केवल ओम् सोम शेष रह जाता, ओम् का ज्ञानांश रह जाता है, तब प्रज्ञालोक से अमोघ मनन उत्पन्न होता है।

७. ब्रह्मज्ञान सम्पन्न आत्मा को सनातन ब्रह्म से युक्त कर। योग-साधक ! ब्रह्म को अपना सतत वास बना तेरे कर्म तुझे जन्म-मरण में नहीं खेंचेंगे। तू मुक्त हो जायगा—(पुरुष एव सविता जै. उ. ४-२७ योनिगृहम् गृहनाम-निघ ३-४ पूर्व-पूर्व कर्म।

८. छाती, शिर और मेरुदण्ड को सीधा रख कर हृदय में शून्य में इन्द्रिय और मन को धारण कर प्रत्याहार सिद्ध करे। धारणा से ध्यान, ध्यान से समाधि में ब्रह्म-ओम् ज्ञांनश की नौका से अविद्या, अस्मिता राग, द्वेष, मृत्युभय की भयंकर प्रबल धाराओं को ब्रह्मज्ञानी पार करे।

९. प्राणों की आने-जाने की गति को समाप्त कर, वाणी, काया, मन को चेष्टा रहित कर, प्राणों का अभाव हो जाने पर, नासिका मूल से बुद्धिकेन्द्र में स्थित हो जावे। घोड़ों के समान चंचल इन्द्रियों से युक्त मन के रथ को सावधानी से जागरूक हो कर वश में रखें। साधना में ब्रह्म से बाहर न जाने दे।

१०. समतल शुद्ध पवित्र स्वच्छ, रोडे-कंकरों-अग्नि की धूनी, उड़ती रेणुका से रहित; शब्द और जल का आश्रय लेने वाले जंगली जानवरों से शून्य; मनोरम, नयनललाम, शान्त निर्वात गुहा में साधना करें।

११. कोहरा, धूआँसा, सूर्य बिम्बसा, वायु सी, अग्नि सी, जुगनुसा, बिजली की चमक सी, स्फटिक सी आभा चन्द्र बिम्ब-सा ध्यान के स्थिर होने पर आन्तर दृष्टि ध्यान में आने लगे तो ध्यान की अवस्था ब्रह्म-ध्यान के योग होने लगी है, इस बात को व्यक्त करते हैं।

१२. पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश पाँचों की पाँचों तन्मात्राओं दिव्य गन्ध, दिव्य रस, दिव्य रूप, दिव्य स्पर्श, दिव्य शब्द में किसी का वा सब का अनुभव होने लगे तो ऐसे योगी को रोग नहीं सतायेगा, बुढ़ापा भी नहीं आयेगा और उसका शरीर निरन्तर दीर्घकालीन अभ्यास से योगमय हो जायगा।

१३. हलकापन, सदास्वास्थ्य, विषयों का निरास, रंग का निखार, स्वर में माधुर्य, शरीर में सुन्दर गन्ध, मूत्र पुरोष की स्वल्पता होने लगती हैं। ये योग में प्रवेश को बताती हैं।

१४. दर्पण जैसे मिट्टी-धूल धोने पर चमक उठता है वैसे ही अविद्या क्लेशों से आत्मतत्त्व को विशुद्ध कर लें तो योगी शोक रहित हो जाता है। यही योगी की कृतार्थता है।

१५. दीपक को देखने के लिये किसी अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार जब योगी आत्मा को आत्मा से ही जान लेता है तब परमात्मतत्त्व को जो आत्मा की सूक्ष्मता में निहित है भी जान लेता है। वह अजन्मा है। अटल ध्रुव कूटस्थ है। सब तत्त्वों से असंग, विशुद्ध तत्त्व है। उसको जान लेने पर कर्मविपाक से मुक्त हो जाता है। कर्म दग्ध बीज हो जाते हैं। फल देने में असमर्थ हो जाते हैं।

१६. यह देवाधिदेव परमदेव सर्वव्यापक है। पूर्णरूप से अभिव्यक्त है। वही प्रकृति में व्याप्त है। विकृति वही करता है। सृष्टि होने पर उस की सत्ता का भान भक्तों को होता है। सर्वज्ञ, सर्वमुख, जन-जन में प्रत्यक् रूप से विराजमान है।

१७. जो देवाधिदेव अग्नि में, जल में व्याप्त है। समस्त संसार में प्रवेश किये है। जो ओषधियों में है, वनस्पतियों में है - सर्वत्र एकरस है। उस देवाधिदेव को बार बार नमस्कार।

दर्शनों में योग विधान

सांख्य दर्शन में योग-साधना

सांख्य दर्शन नास्तिकता का प्रतिपादक नहीं योग का प्रतिपादक है। विस्तृत उल्लेख है योग का ब्रह्म प्राप्तिका !

वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टा ! क्लिष्टा।२-३३।

वृत्ति पाँच प्रकार की है। क्लिष्ट और अक्लिष्ट। १. विद्यादि पांच क्लेशों को उत्पन्न करने वाली और २. विवेक कराने वाली, जिनसे

तमोगुण, रजोगुण और सत्व गुण का कार्य समाप्त हो जाता है, विशुद्ध आत्मा, परमात्मा, अपना, और प्रकृति का अलग ज्ञान प्राप्त करता है। योग में १.५ देखें।

तन्निवृत्तावुपशान्तोपरागः स्वस्थः ।२-३४।

वृत्तियों के निवृत्त हो जाने पर आत्मा का प्रकृति से उपराग—लगाव शान्त हो जाता है। आत्मा अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। योग में "तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" ।। १।३ ।।

कुसुमवच्च मणिः ।२-३५।

आत्मा मणि-बिल्लौर के समान निर्मल है। फूलों पर मणि-बिल्लौर रंग वाला दिखता है। आत्मा प्रकृति में रमता है। तो प्रकृति-जैसा हो जाता है,प्रकृति को ही आया समझ लेता है। बिना पुष्पकों के वह स्वच्छ है। देखो-यो. १. ४१

पुरुषार्थ करणोद्भवोप्यदृष्टोल्लासात् ।०.३६।

इन्द्रियों से पुरुषार्थ, आत्मा अदृष्ट के उदय से करता है।

धेनुवद्वत्साय ।०.३७।

बछड़े के लिए गौ जैसे दूध देती है ऐसे ही इन्द्रियां मानो आत्मा के लिये व्यवहार करती हैं।

करणं त्रयोदशविधमवान्तरभेदात् ।२३८।

५ कर्मेन्द्रिय+५ ज्ञानेन्द्रिय+ ३. मन बुद्धि अहंकार=१३

इन्द्रियेषु साधकतमत्वयोगात् कुठारवत् ।२.३९।

कुल्हाड़े के काटने में न काटने वाला दस्ता भी काटने में अत्यन्त सहायक है ऐसे ही इन्द्रियां भी साधकतम हैं। पर वास्तव में ज्ञान आत्मा ही प्राप्त करता है।

द्वयोः प्रधानं मनो लोकवद्भृत्यवर्गेषु ।२.४०।

दोनों-ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों में मन ही प्रधान है। जैसे लोक में भृत्यों में एक ही प्रधान होता है। शेष अप्रधान-गौण होते हैं।

अव्यभिचारात् ।२।४१।

मन के साथ हुए विना कोई भी कर्मेन्द्रिय या ज्ञानेन्द्रिय काम नहीं कर सकती। यह व्यापक नियम है।

तथाऽशेष-संस्काराधारात् ।२।४२।

और इसलिए कि मन में ही सब कर्मों के संस्कार रहते हैं।

स्मृत्यनुमानाच्च ।२।४३।

मन में संस्कार रहते हैं इसीलिये किसी बात की स्मृति होती है। यही मन में संस्कार रहने का हेतु है।

सम्भवेन्न स्वतः ।२।४४।

स्मृति विना संस्कारों के अपने आप नहीं हुआ करती है। अतः मन में संस्कारों से ही स्मृति होती है।

आपेक्षिको गुण प्रधान भावः क्रिया विशेषात् ।२।४५।

इन्द्रियों का गौंण होना और मन का प्रधान होना अपेक्षा से है। इन्द्रियाँ मन की अपेक्षा करती हैं। विना मन के वे कुछ नहीं कर सकतीं। मन में ही क्रिया विशेष है। इसलिये उस की क्रिया से इन्द्रियाँ प्रवृत्त होती हैं। विना मन के नहीं।

तत्कर्मार्जितत्वात् तदर्थमभिचेष्टा लोकवत् ।२।४६।

आत्मा के लिये इन्द्रियाँ कर्म करती हैं। आत्मा के लिये ही उन का व्यवहार होता है। लोक में भी ऐसे ही व्यवहार होता है। प्रधान धनी आदि पुरुष किराया देकर सवारी कर लेते हैं। उस समय वे उस का ही कार्य करती हैं; अपना कुछ कार्य नहीं होता।

समान कर्मयोगे बुद्धेः प्राधान्यं लोकवत् लोकव त्।२।४७।

आत्मा का दसों इन्द्रियों और मन के साथ समान सम्बन्ध है। उस में आत्मस्थ बुद्धि की ही प्रधानता है। लोक में भी जो अत्यन्त अन्तरंग होता है उसकी ही प्रधानता होती है। अतः आत्मज्ञान की प्रधानता है॥

आविवेकाच्च प्रवर्त्तनम् अविशेषाणाम् ।३।४।

जब तक आत्म तत्त्व और प्रकृति का विवेक नहीं होता। तभी तक अविशेष से इन सब ही को प्रकृति के लिये प्रवृत्ति है। विवेक होने पर प्रकृति के लिये दौड़ समाप्त हो जायगी।

उपभोगादितरस्य ।३।५।

स्थूल शरीर की प्रवृत्ति कर्मों के उपभोग काल तक रहती है।

सम्प्रति परिष्वक्तो द्वाभ्याम् ।३।६।

इस समय तो यह दोनों स्थूल और सूक्ष्म शरीर मिल कर भोग सम्पादन कर रहे हैं।

मातृपितृजं स्थूलं प्रायश इतरन्न

माता पिता से ही स्थूल शरीर प्रायः उत्पन्न होते हैं। सृष्टि के आरम्भ में अयोनिज तथा इस समय भी स्वेदज,उद्भिज शरीर विना माता पिता के होते हैं। दूसरा सूक्ष्म शरीर तो परमात्मा ही देता है, माता-पिता से नहीं मिलता।

पूर्वोत्पत्तेस्तत्कार्यत्वम् भोगादेकस्य नेतरस्य ।३।८।

भगवान् के बनाये लिंग-शरीर से ही सुख-दुःख भोग होता है, स्थूल शरीर से नहीं, सूक्ष्म शरीर के निकल जाने पर स्थूल मृत हो जाता है। भोग नहीं कर सकता।

सप्तदशैकं लिंगम् ।३।९।

लिंग शरीर १७ तत्वों का है। वही एक रहता है। जन्म-जन्मान्तर में भी पलटता नहीं। स्थूल शरीर मृत्यु के साथ समाप्त हो जाता है। जन्म पर दूसरा मिलता है। ११ इन्द्रियाँ ५ तन्मात्रायें और बुद्धि की गणना है।

अणुपरिमाणं तत्कृतिश्रुतेः ।३।१४।

लिंग शरीर अणु परिमाण है। स्थूल शरीर से सूक्ष्म है।

पाँचभौतिको देहः ।३।१७।

यह स्थूल देह जो दिखता है (१ पृथिवी २ जल ३ अग्नि ४ वायु ५ आकाश) इन पाँच भूतों से बना है।

न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः ।३-२०।

चेतनता पांच भूतों के मिलने से नहीं आई है, क्योंकि कोई भूत चेतन नहीं, फिर सब मिलने पर भी चेतना कहाँ से आती। चेतन आत्मा भिन्न है।

ज्ञानान्मुक्तिः ।३।२३।

प्रकृति-पुरुष विवेक से ही मुक्ति होगी । अन्य उपाय नहीं है ।

बन्धो विपर्ययात् ।३।२४।

अज्ञान से, अविवेक से या अविद्या से ही बन्ध है । आत्मा शरीर में कैद है ।

नियत कारणत्वान्न समुच्चय विकल्पौ ।३।२५।

मुक्ति का विबेक ही निश्चित कारण है। अन्य किसी भी साधन के साथ इसका सम्मिश्रण नहीं है । न ही अन्य विकल्प है । केवल विवेक ज्ञान ही मुक्ति का कारण है ।

भावनोपचयाच्छुद्धस्य सर्वं प्रकृतिवत् ।।

अष्टांग योग से अविद्यादि पाँच क्लेशों से छूटे शुद्ध ध्यानी की भागवत भावनाके ध्यान समाधि में परिणत हो जाने पर सब आत्मसात् हो जाता है, स्वाभाविक प्रकृतिवत् हो जाता है । इसी को योग में संयमजय कहा है ।

रागोपहतिर्ध्यानम् ।३।३०।

प्रकृति के राग का हटना ही ध्यान का मूल है । वैराग्य से ही ध्यान सिद्ध होता है ।

वृत्ति-निरोधात् तत्सिद्धिः ।३।३१।

सूत्र २-३३ में बताई वृत्तियों के रोकने से ही ध्यान की सिद्धि होगी। जितना-जितना वैराग्य बढ़ेगा उतना-उतना ध्यान गहरा होगा ।

धारणा-सन-स्वकर्मणा तत्सिद्धिः ।३-३२।

धारणा शब्द जाप छूट कर केवल ज्ञानांश के शेष रह जाने पर दीर्घकालीन आसन सिद्ध होने पर और स्वकर्म--अपने जप, तप और ईश्वर प्रणिधान तथा अन्य यम-नियमों को साधना के परिपाक से ध्यान सिद्ध होगा ।

निरोधश्छर्दि-विधारणाभ्याम् ।३।३३।

चित्त वृत्तियों का निरोध प्राण के निकाल देने पर या अन्दर ही धारण करने पर ही होगा । बाहर निकाल कर अन्दर लेना न पड़े, जैसे उल्टी निकालने पर फिर नहीं आती है । ऐसे ही प्राण अन्दर आने पर

बाहर न जावे तो चित्तवृत्तियों का निरोध हो जायेगा। प्राण के आधार पर ही चित्त काम करता है।

स्थिरसुखमासनम् ।३।३४।

स्थिर और सुख वाला आसन होता है। शरीर स्थिर रहे। निचेष्ट रहे और कष्ट न माने तब ही आसन है।

स्वकर्म स्वाश्रम विहितकर्मानुष्ठानम् ।३।३५।

अपने आश्रम के विहित कर्मों का अनुष्ठान करते हुए ध्यान साधना ही स्वकर्म है। सब आश्रमों में ध्यान करे। वानप्रस्थ में सारा ही समय ध्यान में रहे।

वैराग्यादभ्यासाच्च ।३।३६।

पर, अपर वैराग्य से और अवृतिक साधना से वृत्तिनिरोध होता है। वैराग्य के साथ ओं जाप द्वारा ईश प्रणिधान से ध्यान समाधि सिद्ध होते हैं।

विपर्यय-भेदाः पंच ।३।३७।

अविद्या के पाँच भेद हैं।

अशक्तिरष्टाविंशतिधा ।३।३८।

असामर्थ्य२८ प्रकार की है पाँचों वृत्तियाँ पाँच प्रकार के विपर्यय से २५ प्रकार की और काम, क्रोध, लोभ तीन मिला कर २८ प्रकार की अशक्ति है। मोह अविद्या में आ ही गया।

तुष्टिर्नवधा ।३।३९। आध्यात्मिकादि भेदान्नवधा तुष्टि ।३।४३।

आध्यात्मिकादि भेद से तुष्टि नौ प्रकार की है। आध्यात्मिक-आधिदैविक, आधि भौतिक, सात्त्विक, राजस, तामस भेद से तीन तीन प्रकार की नौ तुष्टि है। उनसे मन को तोष होता है।

सिद्धिरष्टधा ।३।४०। ऊहाभिदिः सिद्धिः ।३।४४।

अपने आप पढ़कर ज्ञान प्राप्त करना 'तार' नामक सिद्धि है। शब्द से ही विना पढ़े जान लेना, 'सुतार' सिद्धि है। विना शब्द के ज्ञान होना 'ऊहा' सिद्धि का नाम 'तारतार' है। विना ऊहा के ही प्राप्ति हो जाना 'रम्यक' नाम की सिद्धि है। बाह्यपदार्थों के विना सदा शुद्धि का नाम 'मुदित' है। तीनों तापों का नाश होना तीन सिद्धियां ये आठ सिद्धियाँ हैं।

आब्रह्म स्तम्बपर्यन्तं तत्कृते सृष्टिराविवेकात् ।३।४७।

विवेक होने पर ब्रह्म से लेकर स्थावर तक की भोगार्थ बनी सृष्टि योगी जन के लिए समाप्त हो जाती है। योगी मरण जन्म से छूट जाता है।

स हि सर्ववित् सर्वकर्त्ता ।३।५६।

वह परमात्मा सर्वज्ञ और सर्व-निर्माता है।

ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा ।३।५७।

ऐसे ईश्वर की सत्ता स्वयं सिद्ध है।

प्रधान-सृष्टिः परार्थस्वतोऽप्यभोक्तृत्वाद् उष्ट्रकुङ्कुमवहनवत् ।३।५८।

मूलप्रकृति स्वयं तो अभोक्ता है, जड है। इसलिए उससे बनी सृष्टि परार्थ है। जीव के बन्धन के लिए होती है। जैसे ऊँट दूसरों के लिए ही केसर ढोता है।

विविक्तबोधात् सृष्टिनिवृत्तिः प्रधानस्य सूदवत् पाके ।३।६३।

विवेकी को ज्ञान हो जाने पर उसके लिए प्रधान की सृष्टि रचना निष्प्रयोजन है। जैसे पाक हो जाने पर रसोइया निवृत्त हो जाता है। विवेकी को सृष्टि का ध्यान ही नहीं रहता।

इतर इतरज्जहाति तद्दोषात् ।३।६४।

प्रकृति के दोष जान लेने पर दोष दर्शन से पर वैराग्य की प्राप्ति हो जाने पर पुरुष प्रकृति से पराङमुख हो जाता है।

द्वयोरेकतरस्य वौदासीन्यमपवर्गः ।३।६५।

पुरुष और परम पुरुष दोनों में से एक पुरुष—आत्मा की प्रकृति से उदासीनता हो जाना अपवर्ग है। परमात्मा तो सृष्टि-रचना करता ही रहता है।

नैरपेक्ष्येऽपि प्रकृत्युपकारेऽविवेको निमित्तम् ।३।६८।

आत्मा चेतन, प्रकृति जड़, दोनों एक दूसरे की कोई अपेक्षा नहीं नहीं रखते। दोनों की चेतना और जड़ता में एक दूसरे की अपेक्षा स्वतः सिद्ध हैं। प्रकृति उपकार करती है यह मान बैठना अविवेक के कारण है। अविवेकी अविद्याग्रस्त ही प्रकृति में फंसता है।

नर्तकीवत् प्रवृत्तस्यापि निवृत्तिश्चारितार्थ्यात् ॥३।६९।

नर्तकी नाच दिखाकर उपरत हो जाती है। उसी प्रकार अवि-द्यादि से ग्रस्त व्यक्ति प्रकृति में फँसता है। अविद्या के विवेक के चरितार्थ होने से सफल होने पर छुटकारा हो जाता है।

दोष बोधेऽपि नोपसर्पणम् प्रधानस्य कुलवधूवत् ॥ ३।७० ॥

प्रधान प्रकृति के दोषों को जान लेने पर पुरुष प्रकृति की ओर नहीं देखता। जैसे कुलवधू किसी को नहीं देखती उस योगी का सच्चिदानन्द धन ही देखने योग्य दृश्य रह जाता है।

नैकान्ततो बन्धमोक्षौ पुरुषस्याविवेकादृते ।३।७१।

पुरुष न सदा बद्ध है न सदा मुक्त। अविवेक से बन्ध होता है। विवेक से मोक्ष। मोक्ष से आना-जाना बना रहता है।

प्रकृतेरांजस्यात् स संगत्वात् पशुवत् ।३।७२।

प्रकृति की अनुरक्ति से बन्ध हो जाता है, जैसे रस्सी की अनुरक्ति से पशु बँधा रहता है। रस्सी का खुल जाना ही मुक्ति है।

रूपैः सप्तभिरात्मानं बध्नाति प्रधानं कोशकारवत्, विमोचयत्ये केन रूपेण ।३।७३।

पाँचों वृत्तियों, अविद्या और अहंकार इन सात से प्रकृति आत्मा को बन्धन में डाले है। जैसे मकड़ी अपने को अपने बनाये जालों से घेर लेती है। अकेली अखंड विवेक ख्याति जीव को मुक्त कर देती है।

निमित्तत्वमविवेकस्य न दृष्टहानि ।३।७४।

अविवेक ही बन्धन का कारण है। यह निश्चय जानना। दृष्टसंसार से वैराग्य ही करना है। उसकी हानि नहीं होती। वह सदातन है।

तत्त्वाभ्यासान्नेति नेति त्यागाद्विवेकसिद्धिः ।३।७५।

तत्त्व के अभ्यास से, पुरुष प्रकृति के भेद ज्ञान के अभ्यास से विवेक सिद्ध होता है। यह संसार सुखकर नहीं है। आत्मा आनन्दमय नहीं है। ऐसा अभ्यास करे।

अधिकारिप्रभेदान्न नियम ।३।७६।

साधना के भिन्न-भिन्न कोटि के अधिकारी होते हैं। सबके लिए एक ही नियम नहीं बनाया जा सकता है। किसी को तप, किसी को जप,

किसी की ईश्वर-प्रणिधान आदि की भिन्न-भिन्न साधना की स्थितियाँ हैं ।

जीवन्मुक्तश्च ।३।७८।

विवेकी जीवन्मुक्त होता है ।

उपदेश्योपदेष्टृत्वात्तत्सिद्धिः ।३।७९।

योग्य जीवन्मुक्त उपदेष्टा और योग्य शिष्य मिलने से विवेक सिद्ध हो जाता है ।

इतरथान्धपरम्परा ।३।८१।

सिद्ध जीव-मुक्त उपदेष्टा न हो तो अन्ध परम्परा चल पड़ती है। जीवन्मुक्त भोगी नहीं होता । भोग में आनन्द कहाँ ! पूर्ण विरक्त सदा समाधिस्थ रहता है ।

चक्र-भ्रमणवद्धृतशरीरः ।।३.८२।।

जीवन्मुक्त की जीवन-यात्रा स्वतः चलती है, जैसे चाक वेग से ही विना घुमाये घूमता है ।

विवेकान्निःशेष दुःखनिवृत्तौ कृतकृत्यो नेतरान्नेतरात् ।।३।८४।।

विवेक से सकल दुःखों की निवृत्ति हो जाने पर योगी कृतकृत्य हो जाता है और किसी उपाय से नहीं ।

बहुभियोगे विरोधोरागादिभिः कुमारी शंखवत् ।४।९।

बहुतों के साथ विवेक नहीं होता । रागादि से विरोध हो जाता है । कुमारी अनेक शंख पहन ले तो टूटेंगे ही । एक हो तो बना रहेगा ।

द्वाभ्यामपि तथैव ४।१०।

दो हों तब भी यही होता है ।

निराशः सुखी पिंगलावत् ।४।११।

सब की आशा छोड़ देने पर मनुष्य सुखी होता है। भगवान् उसको संभाल लेते हैं । जैसे पिंगला भगवान् भरोसे सुखी हो गई ।

अनारम्भेऽपि परगृहे सुखी सर्पवत् ।४।१२।

कुटि आश्रम आदि के निर्माण में न पड़े । बने बनाये पर घर में या

गुफा आदि में निर्द्वन्द्व रहे। जैसे साँप कभी अपना बिल नहीं बनाता, बने-बनाये में घुस जाता है।

बहुशास्त्रगुरूपासनेऽपि सारादा नंषट्पदवत् ।४।१३।

बहुत शास्त्रों के अध्ययन के लिये बहुत गुरुओं की उपासना करने पर भी शास्त्र का सार ग्रहण करे, व्यर्थ की व्याख्या तथा अन्य बातों में न पड़े। भौंरा जैसे फूलों से सार ग्रहण कर लेता है।

इषुकारवन्नैकचित्तस्य समाधिहानिः ।४।१४।

व्युत्थान स्थिति—लोक व्यवहार में भी निपुण इषुकार के समान समाहित रहे। भगवान् को ध्यान में रखे तो समाधि की हानि नहीं होती। व्यवहार में फँसे नहीं, जैसे इषुकार कोई भी दृश्य आये, वह अपने इषु घड़ने में लगा रहता है।

व्रत नियम लङ्घनादानार्थक्यं लोकवत् ।४।१५।

तप और यमादि के नियमों के उल्लंघन से सब साधना व्यर्थ हो जाती है। संसारी जैसे स्वास्थ्यादि का नियम उल्लंघन करने पर रुग्ण हो जाता है।

तद्विस्मरणेऽपि भेकीवत् ।४।१६।

ओं विस्मरण से भी अनर्थ हो जाता है, मेंडकी की तरह। मेंडकी को पानी में रहना होता है। स्थल पर कूद आवे तो दबकर मर ही जाती है। ओं को कभी न भुलाये।

नोपदेशश्रवणेऽपि कृतकृत्यता परामर्शादृते ।४।१७।

योगविधि के पढ़ लेने से भी साधक कृतकृत्य नहीं हो सकता। उसे मनन और अभ्यास करना ही होगा।

प्रणति ब्रह्मचर्योपसर्पणानि कृत्वा सिद्धिर्बहुकालात् तद्वत् ।४।१९।

योगगुरु को प्रणाम, ब्रह्मचर्य का पालन, गुरु के सान्निध्य में रहने से सिद्धि होती है, दीर्घकाल में, जल्दबाजी में नहीं। इन्द्र को बहुत काल में स्वर्गराज्य की सिद्धि हुई थी।

न कालनियमो वामदेववत् ।४।२०।

समय का कोई नियम नहीं। देर लगती है। शीघ्र भी संस्कारों से

सिद्धि हो सकती है, जैसे वामदेव को शीघ्र सिद्धि हो गई और वह ऋषि तक हो गया।

अध्यस्तरूपोपासनात् पारम्पर्येण यज्ञोपासकानामिव ।४।२१।

सत्-चित्-आनन्द की अध्यास रूप से उपासना—योगाभ्यास करने से परम्परा से यथासमय जप-धारणा-ध्यान, समाधि की सिद्धि हो जाती है। यज्ञ-याग की उपासना करने वालों को यज्ञ-फल जैसे मिलता है, पर यज्ञ से योग-सिद्धि नहीं होती।

इतरलाभेऽप्यावृत्तिः पंचाग्नियोगतो जन्मश्रुतेः ।४।२२।

यज्ञ से लाभ होता है पर पुनः पुनः जन्म होता है। आवागमन नहीं छूटता। पंचमहायज्ञ करते-करते भी जन्म का श्रुति विधान है। पंचमहायज्ञों से भी मोक्ष नहीं।

विरक्तस्य हेय हानम् उपादेयोपादानं हंसक्षीरवत् ।४।२३।

पूर्ण विरक्त के हेय दुःख का हान हो जाता है। उपादेय पुरुष की प्राप्ति हो जाती है। हंस भी हेय जल को पृथक् कर दूध को ले लेता है। यही परमहंस का कार्य है।

लब्धातिशययोगात् तद्वत् ।४।२४।

अत्यन्त उच्चकोटि के योगाभ्यास से यह स्थिति आती है। हंस के समान।

न कामचारित्वं रागोपहते शुकवत् ।४।२५।

संसार के रागी के दुःख के हान में और भगवान् के उपादान में कामचारिता-स्वतन्त्रता नहीं हो सकती, जैसे पंजरे में बँधे तोते की उड़ान अपने आधीन नहीं है।

गुणयोगात् बद्धः शुकवत् ।४।२६।

सत्त्व, रज और तमो गुणों में रागी बँधा रहता है, जैसे तोता पिंजरे में।

न भोगाद्रागशान्तिर्मुनिवत् ।४।२७।

भोगों के भोगने से भोगों से प्रेम समाप्त नहीं होता। जैसे सौमी मुनि का इतिहास प्रसिद्ध है।

दोषदर्शनादुभयोः ।४।२८।

भोक्ता के बन्धन और भोगों के दोषों के विचारते रहने से ही

वैराग्य होता है। संसार का राग समाप्त हो जाता है।

न मलिनचेतस्युपदेशबीजप्ररोहोऽजवत् ।४।२९।

मलिन चित्त में योगोपासना का बीज अंकुरित नहीं होता जैसे बकरे के पेट में अनेक अन्न जाते हैं, वहाँ मल-खाद भी है पर पेट में बीज फूटता नहीं। अंकुरित नहीं होता।

नाभासमात्रमपि मलिन-दर्पणवत् ।४।३०।

मैले चित्त में तो भगवान् का आभास तक भी नहीं होता, जैसे मैले शीशे में कुछ भी नहीं दीखता।

न भूतियोगेऽपि कृतकृत्यतोपास्यसिद्धिवत् उपास्यसिद्धिवत् ।४।३२।

विभूतियों के सिद्ध हो जाने पर भी योगी कृतकृत्य नहीं होता। जैसा कि उपास्य भगवान् की सिद्धि होने पर योगी कृतकृत्य होता है।

नाणिमादियोगोऽप्यवश्यम्भावित्वात्तदुच्छितेरितरयोगवत्

।५।८२।

अणिमा आदि आठों सिद्धियों का मिल जाना भी योग नहीं है, उन सिद्धियों का भी अवश्य नाश हो जाता है, समाप्ति हो जाती है जैसे दूसरे मिलने वाले पदार्थों का भी वियोग हो जाता है।

योगसिद्धयोऽप्यौषधादि सिद्धिवन्नापलपनीयाः ।५।१२।

योग सिद्धियाँ खण्डन अपलाप करना नहीं चाहिये। औषधि जैसे रोग नाश में सिद्ध है ऐसे ही योगजासिद्धियाँ भी सिद्ध हैं।

समाधि सुषुप्ति मोक्षेषु ब्रह्मरूपता ।५।१११।

समाधि, सुषुप्ति और मोक्ष में ब्रह्मानन्द की अनुभूति होने से ब्रह्म रूपता-सी होती है।

नैकस्यानन्द चिद्रूपत्वे द्वयोर्भेदात् ।५।६६।

दोनों आनन्द चेतन रूप नहीं हैं। एक ही आनन्द चित् है। वह परमात्मा है। दोनों का यह भेद है।

न षट् पदार्थ नियमः तद्बोधान्मुक्तिः ।५।८५।

प्रकृति के छः पदार्थों के जानने का नियम अनिवार्य नहीं। ब्रह्मबोध से ही मुक्ति होती है।

देहादिव्यतिरिक्तोऽसौ वैचित्र्यात् ।६।२।

आत्मा देह आदि से भिन्न है क्योंकि इनसे विलक्षण है ।

अत्यन्त दुःख निवृत्या कृतकृत्यता ।६।५।

दुःख का अत्यन्ताभाव ही आत्मा की कृतकृत्यता है ।

कुत्रापि कोऽपि सुखी न ।६।७।

कहीं भी किसी स्थिति में भी कोई सुखी नहीं है । सब दुःखी ही हैं ।

परधर्मत्वेऽपि तत्सिद्धिरविवेकात् ।६।११।

दुःख आदि प्रकृति के धर्म हैं । अविवेक से जीवात्मा अपने समझ लेता है ।

प्रकारान्तराभावादविवेक एव बन्धः ।६।१६।

अविवेक ही बन्धन का हेतु है । बन्धन में अन्य हेतु का अभाव है ।

मुक्तिरन्तरायध्वस्तेर्न परा ।६।२०।

अविवेक का नाश हो जाने से ही मुक्ति है,अन्य कुछ नहीं ।

अधिकारित्रैविध्यान्न नियमः ।६।२१।

मन्द, मध्य, उत्तम, अधिकारियों के भेद हैं । अतः सब के लिए एक ही कोटि की साधना का नियम नहीं है ।

स्थिरसुखमासनमिति न नियमः ।६।२४।

अचल और सुख देने वाला हो यही बैठने के आसन का नियम है । अन्य आसनों का नियम नहीं है । आसन तो शतशः हो सकते हैं ।

ध्यानं निर्विषयं मनः ।६।२५।

मनका विषयों की वृत्ति से रहित होना ध्यान है वैराग्य से विषयोपरत होने पर ही ध्यान होता है ।

ध्यान धारणाभ्यास वैराग्यादिभिस्तन्निरोधः ।६।२६।

धारणा, ध्यान, समाधि और वैराग्य से चित्त की वृत्तियाँ रुकती हैं ।

न स्थाननियमः चित्तप्रासादात् ।६।३१।

स्थान का नियम प्रधान नहीं । चित्त की प्रसन्नता ही नियम है । चित्त को सदा प्रसन्न रखे ।

अहंकारः कर्त्ता न पुरुषः ।६।५४।

अहंकार ही कर्त्ता है, पुरुष नहीं ।

कर्मनिमित्तः प्रकृतेः स्वस्वामिभावोऽप्यनादिबीजांकुरवत् ।६।६७।

प्रकृति के साथ स्व स्वामिभाव का सम्बन्ध अनादि है, बीजांकुर की तरह ।

अविवेकनिमित्तको वा पञ्चशिखः ।६।६८।

प्रकृति को 'स्व' अपने को स्वामी समझना अविवेक के कारण है । ऐसा पंचशिखाचार्य ने माना है ।

यद्वा तद्वा तदुच्छित्तिः पुरुषार्थस्तदुच्छित्तिः पुरुषार्थः ।६।७०।

स्व स्वामी सम्बन्ध किसी प्रकार भी हुआ हो, उसका नाश, प्रकृति से परवैराग्य ही पुरुष के जीवन का प्रयोजन है । प्रकृति से परवैराग्य ही पुरुषार्थ है ।

न्याय दर्शन में योग साधना

न्याय दर्शन में योग प्रक्रिया पूरी दी है । प्रमाण-प्रमेय आदि के तत्त्वज्ञान से निःश्रेयस-मोक्ष होता है । यह न्याय के आरम्भ के सूत्रों में कहा है सांख्य की नाई तर्क उपस्थित किया नअन्त में४-२-३८ में वात्स्याय ने अवतरणिका उठाई है :—

कथम् तत्त्वज्ञान मुत्पद्यते—तत्व ज्ञान का साधन क्या है ? तत्त्वज्ञान कैसे उत्पन्न होता है ? सूत्रकार गौतम ने उत्तर दिया है ।

समाधि विशेषाभ्यासात् ।४।२।३८।

समाधि विशेष अर्थात् सम्प्रज्ञात समाधियों के अभ्यास से ही तत्त्वज्ञान होता है ।

वात्स्यायन ने भाष्य किया—"स तु प्रत्याहृतस्येन्द्रियेभ्यो मनसोधारकेण प्रयत्नेन धार्यमानस्यात्मना संयोगस्तत्त्वबुभुत्साविशिष्टः, सति हि तस्मिन्निन्द्रियार्थेषु बुद्धयो नोत्पद्यन्ते, तदभ्यासवशात् तत्त्वबुद्धिरुत्पद्यते । यदुक्तमसति हि तस्मिन् इन्द्रियार्थेषु बुद्धयो नोत्पद्यन्ते इत्येतत् ।

—इन्द्रियों से मन को हटाकर, धारणा से आत्मा के साथ मन का संयोग हो जाता है । उस समय आत्मा तत्त्व को जानने की भावना से विशिष्ट रहता है, ऐसी समाधि की स्थिति में इन्द्रियों से ज्ञान नहीं होता है । उस सम्प्रज्ञात के अभ्यास से तत्त्वों का साक्षात्कार होता है । इसीलिए

कहा है कि सम्प्रज्ञात में ही तत्त्वबोध होता है। इन्द्रियों से विशुद्ध ज्ञान नहीं होता है।

नार्थ-विशेष-प्राबल्यात् ।४।२।३६।

अर्थो,पदार्थो में, विषयों में विशेष प्रबलता होने से सम्प्रज्ञात समाधि नहीं लगता।

भाष्यम्—विशेषप्राबल्यात् समाधिविशेषो नो त्पद्यते।

क्षुदादिभिः प्रवर्त्तनाच्च ।४।२।४०।

क्षुत्पिपासाभ्यां व्याधिभिश्च समाधिविशेषो नोत्पद्यते—वात्स्यायन भूख-प्यास, और रोगों से सम्प्रज्ञात समाधि नहीं लगा करती। अतः भूख-प्यास पर विजय प्राप्त करना होगा, तब रोग भी न होंगे- न बाधा ही होगी। यह अभिप्राय है।

पूर्वकृतफलानुबन्धात्तदुत्पत्तिः ।४।२।४१।

भाष्यम्—पूर्वकृतो जन्मान्तरोपचित्तितस्तत्त्वज्ञानहेतुधर्म प्रविवेकः फलानुबन्धो योगाभ्यास-सामर्थ्यम्—पूर्व-दीर्घकाल तक किया योग अभ्यास तथा जन्म-जन्मान्तर में किया योगाभ्यास तत्त्वज्ञान का हेतु होता है, तब पूर्ण योगसामर्थ्य प्राप्त होता है ॥

अरण्य गुहा पुलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशः ।४।२।४२।

वन,गुफा,नदी तीर आदि में योगाभ्यास करने का उपदेश है वात्स्यायन लिखते हैं:—योगाभ्यासजनितो धर्मो जन्मान्तरेऽप्य नुवर्त्तते। प्रचय- कागते तत्त्वज्ञान हेतौ धर्मे, प्रकृष्टतायां समाधि-भावनायां तत्त्वज्ञानमुत्पद्यते दृष्टश्च समाधिना अर्थ-विशेष- प्राब याभिभवः।

—योगाभ्यास के संस्कार जन्मान्तर में अनुवर्त्तित होते हैं। तत्त्व-ज्ञान के कारण योग संस्कार के भली प्रकार संगृहीत हो जाने पर, समाधि भावना के प्रबल हो जाने पर तत्त्वज्ञान उत्पन्न होता है। देखा गया है—समाधि से विशेष पदार्थों के विषयों की प्रबलता दब जाती है।

तदर्थं यम-नियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चाध्यात्म विध्युपायैः ।४।४६।

तस्यापवर्गस्याधिगमार्थयम नियमाभ्यामात्म संस्कारः यमः समान-माश्रमिणां धर्म-साधन नियमस्तु विशिष्टम्। पुनरधर्म हानम्, धर्मोपचयश्च योगशास्त्राध्यात्मविधिःप्रतिपत्तव्यः। सः पुनस्तपः, प्राणायामः, प्रत्याहारो

धारणा ध्यानमिति । इन्द्रिय विषयेषु प्रसंख्यानाभ्यासो, रागद्वेष प्रहाणार्थ उपायस्तु योगाचार विधानम् इति—उस मोक्ष की प्राप्ति के लिए यम नियम के परिपालन से आत्मा का संस्कार होता है । पांचों यमों, पांचों नियमों का पालन सब आश्रम वालों के लिये समान धर्म है । यम सब ही ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्न्यासी को पालने चाहियें । नियम तो विशेष हैं । ब्रह्मचर्य गृहस्थ में साधारण वानप्रस्थ में पूरी तरह पालन करना होता है । आत्म संस्कार का निमित्त अधर्म को सर्वथा छोड़ना है । अहिंसा आदि धर्मों का पूर्णतया पालन करना है । योगशास्त्र से आत्मज्ञान की विधि जाननी चाहिए । वह है—तप, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा-ध्यान का सम्यक् अभ्यास, इन्द्रियों के विषयों का पूर्ण विवेक से परित्याग करने का अभ्यास और रागद्वेष के नाश का उपाय तो योग के आचार के विधान का परिपालन है ।

ज्ञान ग्रहणाभ्यासस्तद्विद्यैश्च सह संवादः ॥४७॥

ज्ञायतेऽनेनेतिज्ञानमात्मविद्याशास्त्रं तस्य ग्रहणम्अध्ययन धारणे, अभ्यासः सतत क्रियाध्ययन श्रवण चिन्तनानि, तद्विद्यैश्च सह संवाद.इति प्रज्ञापरिपक्वार्थः । परिपाकस्तु संशयछेदनम् अविज्ञातार्थ बोधोऽध्यवसिता-भ्यनुज्ञानमिति समायवादः सम्वादः । तद्विद्यैश्च सह संवाद इत्यविभक्तार्थं वचनं विभज्यते ।

—जिससे जानें वह ज्ञान है । अर्थात् आत्मविद्या का शास्त्र,योगशास्त्र, उसका ग्रहण करना अर्थात् पढ़ना और आचरण में लाना अभ्यास है लगा-तार योग की क्रिया करना, योगशास्त्र का पढ़ना, सुनना, और चिन्तन करना । उस योगशास्त्र के जानने वालों के साथ वाद करना । इन बातों से योग की धारणा या योग प्रज्ञा परिपक्व होती है । परिपाक होता है उस समय जब संशयों का उच्छेद हो जाये । न जाना हुआ सब जान लिया जाये । जिसके ज्ञान का निश्चय किया था उसका ज्ञान हो जाये । किसी अनुभवी से मिल कर जानना सम्वाद है । योग विद्या को जानने वालों के साथ सम्वाद करना । इस प्रकार अविभक्त करके कहे 'सम्वाद' को विभक्त करके समझ लेना चाहिए ।

तं शिष्य-गुरु-सब्रह्मचारि-विशिष्ट-श्रेयोऽर्थिभिरभ्युपेयात् ।४८।

उस सम्वाद का शिष्य, गुरु, सहाध्यायी-सतीर्थ्य, विशेष कल्याण-मोक्ष के साधकों के पास बैठ कर करे ।

प्रतिपक्षहीनमपि वा प्रयोजनार्थमर्थित्वे ।४९।

परतः प्रज्ञामुपादित्समानस्तत्त्वबुभुत्सा प्रकाशनेन स्वपक्षमनवस्थापयन् स्वदर्शनं शोधयेत् । अन्योऽन्य प्रत्यनीकानि च प्रवादुकानां दर्शनानि स्वपक्षरागेण चैके न्यायमतिवर्तन्ते तत्र ।

—दूसरे से प्रज्ञा प्राप्त करने का इच्छुक तत्त्व के जानने की इच्छा प्रकट करे । अपने पक्ष की स्थापना न करे । अपने ज्ञान को शुद्ध करले । विवाद करने वालों के ज्ञान एक दूसरे से विपरीत हुआ ही करते हैं । अपने पक्ष के मोह में बहुत से न्याय को छोड़ देते हैं ।

वीतरागजन्मादर्शनात् ।३।१।२५।

पूर्ण विरक्ति परवैराग्य प्राप्त कर जन्म नहीं होता । उसकी मुक्ति हो जाती है ।

दोषनिमित्तं रूपादयो विषयाः संकल्पकृताः ।४।२।२।

कल्पना से सृजन किए हुए रूपादि पाँचों विषय मन के संकल्प उत्पन्न हुए हैं । इनका अपना स्वरूप तो दोष निमित्तक नहीं । मोह के कारण, अज्ञानवशात् पांचों विषयों में अनुरक्ति होती है । विषयों का भी एक रूप नहीं । किसी को लाल ही अच्छा लगता है, किसी को नीला, किसी को पीला, क्यों ? यदि लाल ही मोहक है तो सब को मोहित करे । एक को ही क्यों करता है । ऐसे ही अन्य रंग हैं । किसी विशेष रंग में ही आकर्षण होता तो सब को ही वह रंग आकृष्ट करता । बस जिसने जिसका संकल्प कर लिया, उसे वही आकृष्ट करता है । यही स्वाद, गन्ध, शब्द, स्पर्श आदि की फँसावट में मन का व्यामोह ही कारण है ।

दोषनिमित्तानां तत्त्वज्ञानादहंकार निवृत्तिः ।४।२।१।

वात्स्यायन भाष्यम्—मिथ्याज्ञानं वै खलु मोहः । न खलु तत्त्वज्ञानस्यानुत्पत्तिमात्रम् । तच्च मिथ्याज्ञानं यत्र विषये प्रवर्त्तमानं संसारबीजं भवति ।

स विषयः तत्त्वतोज्ञेय इति । किं पुनस्तन् मिथ्याज्ञानम् । अनात्मनि आत्मग्रहः अहमस्मि इति मोहोहंकारः इति । अनात्मानं खल्वहमस्मीति पश्यतो दृष्टिरहंकार इति किं पुनस्तदर्थजातं यद्विषयोऽहंकारः संसार-बीजं भवति । अयं खलु शरीराद्यर्थजातमहमस्मीति व्यवसितः,तदुच्छेदनादुच्छेदनमात्मनो मन्यमानोऽनुच्छेद तृष्णापरिप्लुतः पुनः पुनस्तदुपादत्ते, तदुपाददानो

जन्ममरणाय यतते। तेनावियोगन्नात्यन्तं दुःखाद्विमुच्यते इति। यस्तु दुखं, दुःखायतनं, दुःखानुषक्तं सुखंच 'सर्वम् इदं दुःखमिति पश्यति स दुःखं परिजानाति। परिज्ञातं च दुःखं प्रहीणं भवति, अनुपादानात् सविषान्नवत्। एवं दोषान्, कर्म च दुःख-हेतुरिति पश्यति। न चाप्रहीणेषु दोषेषु दुःख प्रबन्धोच्छेदेन शक्यं भवितुमिति दोषान् जहाति प्रहीणेषु च दोषेषुन प्रवृत्तिः प्रतिसन्धानायेत्युक्तम्।

प्रेत्यभावः, फल-दुःखानि च ज्ञेयानि, व्यवस्थापयति दोषांश्च प्रहेयान्। अपवर्गोऽधिगन्तव्यः, तस्याधिगमोपायस्तत्वज्ञानम्। एवं चतसृभिर्विद्याभिः प्रमेयं विभक्तमासेवमानस्याभ्यस्यतो भावयतः सम्यग् दर्शनं यथाभूतावबोधस्तत्व ज्ञानमुत्पद्यते इति॥

—मिथ्या ज्ञान ही मोह है। तत्वज्ञान का केवल उत्पन्न न होना ही मिथ्या ज्ञान नहीं है। वह मिथ्या ज्ञान जिन-जिन विषयों में होने पर संसार का संसार के मरण जन्म का चक्र बनता है वह मिथ्या ज्ञान है, उन विषयों को, प्रकृति पुरुष के स्वरूप से तात्विक रूप में साक्षात् करना चाहिए। केवल सुन सुनाकर नहीं।

वह तत्व ज्ञान क्या है?

"अनात्म पदार्थों को आत्मा समझ लेना। प्रकृति और प्रकृति से बने रुपया, पैसा, सोना, चांदी, मकान, भूमि, अपनी देह, पर देह आदि को आत्मा समझ लेना। उनके अभाव में आत्मा का सन्तप्त होना मिथ्या ज्ञान है। आत्मज्ञानी सन्तप्त नहीं होता।

'यह सब मैं हूं, या यह मेरा है यही अहंकार है, यह अहंकार ही अविद्या की जड़ है। 'आत्मा से भिन्न—अनात्मपदार्थों को 'मैं—आपा-आत्मा' समझना—इस प्रकार जानने वाले का दर्शन-ज्ञान ही अहंकार हैं।

— वह कौन कौन से पदार्थ हैं जिनमें आत्मभाव होने से अहंकार होता है और वह संसार का जन्म-मरण का कारण-बीज बना रहता है?

"शरीर, मन,वेदना, बुद्धियों को आत्मा-आपा समझ लेना अहंकार है, जन्म-मरण के चक्र में फँसना है।"

इनमें आत्मबुद्धि अहंकार कैसे संसार का—आत्मा के जन्ममरण में संसरण का हेतु बनता है?

"यह चेतन आत्मा शरीर आदि पदार्थों को ही आत्मा निश्चय किये है। इन पदार्थों के नाश को अपना—आत्मा का नाश मान बैठता है। इस

लिए इन पदार्थों का नाश न हो इस तृष्णा से लालसा से आप्लावित है, भरा पड़ा है। घिरा पड़ा है। इसलिये बार बार उनका संग्रह करता है। उनको संग्रह करता हुआ जन्म-मरण संसरण के लिए ही यत्न करता है। उन पदार्थों के साथ वियोग न होने से, संयोग के बने रहने से कभी भी दु:ख से अत्यन्त सार्वकालिक छुटकारा नहीं होता है।"

जो दु:ख को, दु:ख के आयतन—दु:ख के ही कारण, दु:ख से मिश्रित सुख को भी 'सब कुछ दु:खमय है, दु:ख रूप है, ऐसा जानता है, समझ लेता है वह ही दु:ख के स्वरूप को पहचान गया है। दु:ख का स्वरूप जान लेने पर छूट जाता है, छोड़ दिया जाता है जैसे विषाक्त अन्न को छोड़ देते हैं। इस प्रकार अविद्या आदि दोषों को और कर्मो को भी दु:ख का हेतु ही जानता है, मानता है। अविद्यादि क्लेश दोषों के छूटे बिना दु:ख की परम्परा नष्ट नहीं होती,नहीं हो सकती। अन्य केवल तर्क ज्ञान इसका साधन नहीं है। इसलिए मोक्ष का इच्छुक अविद्यादि दोषों को छोड़ देता है। छूटे हुए अविद्या आदि में फिर प्रवृत्ति नहीं करता नहीं तो फिर उसी प्रकार फँसावट हो जायेगी।

जानने योग्य मृत्यु, मृत्यु के फल और दु:खों को, कर्मो को और हेय दु:खों को छोड़ने की व्यवस्था करता है।

मुक्ति—अपवर्ग—मोक्ष प्राप्त करना चाहिए। मानव-जीवन का लक्ष्य यही है। मुक्ति पाने का उपाय तत्त्व ज्ञान है। इस प्रकार अविद्या आदि चारों के अभाव से जन्य विद्या, आत्म ज्ञान, सुख से विमुखता और दु:खानुभव शून्यता प्रमेय प्रकृति पुरुष को पृथक्-पृथक् भाव से अनुभव करते हुए विवेक-सम्पन्न योगाभ्यासी को सम्यग्दर्शन—सही सही विशुद्ध ज्ञान होता है, उसको सब भूतों का यथातथ्य ज्ञान उत्पन्न होता है।"

प्रवृत्तिर्वाग्बुद्धिशरीरारम्भः इति ।१।१।१७।

वाणी, बुद्धि, शरीर से जिनका आरम्भ होता है वह सब प्रवृत्ति है। इन्हें ही योग में पांच प्रवृत्तियाँ कहा है।

प्रवर्त्तनालक्षणो दोषः । १।१।१८ ।

जिनसे प्रवृत्ति होती है, जिनसे वाणी, बुद्धि, और शरीर कार्य करते हैं वे ही वृत्तियाँ दोष कहाती हैं।

प्रवृत्ति दोष जनितोऽर्थः फलम् । १।१।२० ।

प्रवृत्ति-दोष से उत्पन्न परिणाम ही प्रवृत्ति का फल तथ्यरूप से दु:ख ही है।

बाधना लक्षणं दुःखम् । १।१।२१ ।

प्रवृत्ति और प्रवृत्ति फल मोक्ष में सुख में बाधक है इसलिए दुःख है ।

तदत्यन्त विमोक्षोऽपवर्गः । १।१।२२ ।

उस प्रवृत्ति, प्रवृत्ति का फल अत्यन्त छूट जाना मोक्ष है । मुक्ति है, इस मोक्ष की ही साधना पूर्ववर्णित न्याय ने बतायी है ।

वेदान्त दर्शन में योग साधना

आवृत्तिरसकृदुपदेशात् । ४।१।१ ।

ओं नाम की आवृत्ति करनी चाहिए । पुनः पुनः उच्चारण वाचिक, फिर मानसिक करना चाहिए । अन्त में बौद्धिक । वेद, उपनिषद्, आदि में स्मृतियों में शतशः बार यही बताया गया है ।

(देखो हमारी लिखी 'ओं मन्त्रोपासना')

लिंगाच्च । ४।२।२ ।

सत् चित् आनन्द लिगों से, गुणों की भावना से स्मरण करे । यही साधना अर्थ-भावना तक-परमेश्वर पदार्थ तक पहुँचा देगी ।। आदित्यवर्णम्, तेजोऽसि,भर्गः सर्वत्र भास्वर स्वरूप का उल्लेख है ।। 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्, आदि । "यत्रआनन्दाश्च मोदाश्च" अथर्व वेद में कहा है आनन्दमय में ध्यानमग्न होने से आनन्द ही आनन्द रहता है । मोद ही मोद रहता है । 'सर्वज्ञानमयो हि सः वह ज्ञान स्वरूप चेतन तत्त्व है ।

आत्मेत्युपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च । ३।१।३ ।

ध्यान में आत्मा और परमात्मा का अवलम्बन कर उन्हें प्राप्त हो जाते हैं ।

आत्मनात्मानमभिसंविवेश ।। यजुर्वेद । ३१।११ ।

'संविश्यात्मनात्मानम्' ।। माण्डूक्य ।०।१२ ।

आत्मा से परमात्मा में प्रवेश करके ध्यान करे ।

न प्रतीके न हि सः । ४।१।४ ।

प्रतीकोपासना से योग-साधना नहीं होती है ।

ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात् । ४।१।५ ।

साधना में उत्कर्ष का हेतु ब्रह्मदृष्टि है । ब्रह्मरूप अर्थावगति बनी रहे ।

आदित्यादिमतयश्चांग उपपत्तेः । ४।१।६ ।

आदित्यादि प्रकाश, आदित्य, चन्द्रतारा, आदि का साधना में दर्शन उपपन्न है। योगाग्रगति का चिन्ह है।

उद्गीथ आदित्यः । छान्दो० २।२।१ ।

आसीनः सम्भवात् । ४।१।७ ।

आसनासीन ध्यान करे,ब्रह्मोपासना आसन से ही सम्भव है। शयान को आलस्य नीन्द घेर लेती है। खडा श्रान्त हो जाता है। चलता हुआ चंचल होता है।

ध्यानाच्च । ४।१।८ ।

ब्रह्म ज्ञान भी ध्यान से ही सम्भव है।

अचलत्वं चापेक्ष्य ।४।१।९ ।

अचल रहने से ही ध्यान निष्पन्न होता है। हिलने-डुलने से मन डुल जाता है। मन हिलता है तो ही तो शरीर हिलता है।

स्मरन्तिच । ४।१।१० ।

योगाभ्यासी नाम स्मरण करते हैं। 'ओं क्रतो स्मर यजु: ४० अ० योग क्रिया का अभ्यासी 'ओं' का स्मरण करता है। 'ओंकारं ध्यायन्ति योगिनः" ओं का जप करते करते योगी ध्यान पर पहुँचते हैं। शिखोपनिषद्। 'प्रणवो धनुः'। योग साधना का प्रणव ही धनुष है। आदि।

यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात् । ४।१।११ ।

जहाँ एकाग्रता हो वहीं रहे। पर्वत, नदी कूल, आदि का कोई प्रति बन्ध नहीं है।

आ प्रायणात् तत्रापि दृष्टम् ॥ 'ओं स्मरण'मरण पर्यन्त है यावज्जीवन है। "प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत" प्रश्नो० ५।१॥ यावदायुषं ब्रह्म लोकमभिसम्पद्यते ॥ छान्दो० ८-१५-१॥ आयुपर्यन्त ब्रह्म नाम ओम का स्मरण कर उस ब्रह्म लोक को प्राप्त हो।

तदधिगम उत्तरपूर्वाधयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात्
। ४।१।१३ ।

ध्यान साधना से—योगापासना से उस ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

और साथ ही भूत और भविष्यत् के पापों का भोग नहीं मिलता है। वे पाप नष्ट ही हो जाते हैं। ऐसा ही शास्त्रों में व्यपदेश है—

"यथा पुष्कर पलाशे आपो न शिलष्यन्ति एवमेवंविदि पापं कर्म न शिलष्यते" छान्दो० ४।१४।३।

ढाक के पत्ते पर पानी नहीं लगता, ऐसे ही ब्रह्मज्ञानी योगी को पाप और कर्म नहीं छूते ॥

तद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते" छान्दो० ५।२४।३।

जैसी सींक की लिपटी रुई अग्नि में भस्म हो जाती है ऐसे इसध्यानी के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।

इतरस्यापि एवमश्लेषः पाते तु। ४.१.१४।

योगी के दूसरे प्रारब्ध पुण्य कर्मों का भी अश्लेष और पूर्व संचित पुण्यों का नाश हो जाता है। देहपात होने पर। ऐसा ही कहा भी है।

"क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन दृष्टे परावरे" ।मुण्डक २।२।८।

भगवान् के दर्शन पर इस योग-साधक के कर्म नष्ट हो जाते हैं।

न वै सतः प्रियाप्रिययोरपहृतिरस्ति। अशरीरं वावसन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः। छान्दोग्य ८.१२.१।

शरीर के रहते तक पाप पुण्य रहते हैं, पर विरक्त ध्यानी के शरीर अध्यास न रहने पर पाप पुण्य का नाश हो जाता है।

अनारब्ध कार्ये एव तु पूर्वे तदवधेः ।४.१.१५।

संचित कर्म ही जिन्होंने फल प्रदान आरम्भ नहीं किया वे पाप पुण्य नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्म-प्राप्ति ही पुण्य पाप नाशक की सीमा है।

"तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये"—छान्दोग्य० ।६.१४.२।

उसको उतनी ही देर है जब तक मुक्त नहीं होता। मुक्ति के साथ ही पाप पुण्य नष्ट हो जाते हैं।

अग्निहोत्रादितु तत्कार्यायैव तद्दर्शनात् । ४.१.१६ ।

अग्निहोत्रादि ब्रह्मप्राप्ति के लिए ही गृहस्थादि आश्रमों में विहित हैं। उनका कार्य परोपकार कर्म के कारण सत्व गुण की अभिव्यक्ति ही है। पुण्य भी नाश हो जाता है—

यदा पश्यः पश्यतेरुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्म योनिम् ।
तदा विद्वान् पुण्य पापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति ।।—जब साक्षात्कृत योगी हिरण्यरूप कर्ता ईश्वर पर ब्रह्म वेदाविष्कर्ता को देखता है । उस समय वह ब्रह्मज्ञानी पुण्य पाप को नाश करके निष्कलंक हो जाता है, अपरामृष्ट परब्रह्म की समता प्राप्त करता है चाहे परब्रह्म में परिणत नहीं होता ।

यदेव विद्ययेति हि । ४.१.१४ ।

अविद्यादिपंचक को हान करके विवेक से ब्रह्म साक्षात् करता है ।

—यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति । छान्दो० । १.१.१० ।

विवेक, श्रद्धा और ब्रह्मोपनिवेशन से जो ब्रह्मज्ञान होता है, वही श्रेष्ठतम है ।

योगिनः प्रति स्मर्यते स्मार्ते चैते । ४.३.२१ ।

योगी के जानने योग्य दक्षिणायन उत्तरायण हैं। ये दो भाग स्मृति में आये हैं ।

दर्शनाच्च । ४.३.१३ ।

देवयान मार्ग भी ब्रह्म दर्शन कराता है ।

यह थोड़ा सा वेदान्त दर्शन का योग विषय दर्शाया ।

वैशेयोग दर्शन में योग

तदनारम्भ आत्मस्थे मनसि, शरीरस्य दुःखाभावः संयोगः । ५.२.१६ ।

मन के अपने आप में ही ठहर जाने पर, सर्ववृत्तियों का निरोध हो जाने पर, उसकी वृत्तियों का अनारम्भ होने पर, शरीर के दुःखों का अभाव हो जाता है। क्लेश और कर्म की निवृत्ति हो जाती है। वही योग है ।

तदभावे संयोगाभावोऽप्रादुर्भावश्च मोक्षः । ५.२.१८ ।

वृत्तियों कर्मों, क्लेशों का संयोग न होने पर जन्म-मरण का चक्र समाप्त हो जाता है यही मोक्ष है ।

आत्मन्यात्ममनसोः संयोगविशेषादात्मप्रत्यक्षम् ।। ९.१.११ ।।

आत्मा और मन के संयम-प्रक्रिया के द्वारा आत्मा में संयोगविशेष होने से आत्मा का प्रत्यक्ष होता है ।

तथा द्रव्यान्तरेषु प्रत्यक्षम् ।९.२.१२ ।

उसी प्रकार आत्मा और मन के संयम के प्रयोग के द्वारा संयोग विशेष के होने पर अन्य प्रकृति स्थूल, सूक्ष्म पदार्थों का योगज प्रत्यक्ष होता है ।

असमाहितान्तः करणा उपसंहृतसमाधयस्तेषां च । ९.१.१३ ।

एकाग्रवृत्ति वालों को भी समाहित हो जाने पर और सम्प्रज्ञात समाधियों के उपसंहार में सब प्रत्यक्ष हो जाता है ।

तत्समवायादात्मकर्मगुणेषु । ९.१.१४ ।

उन सूक्ष्म द्रव्यों के समवाय सम्बन्ध से रहने वाले गुणों और कर्मों का भी प्रत्यक्ष होता है ।

आत्मसमवायादात्मगुणेषु । ९.१.१६ ।

आत्मा में समवाय-नित्य सम्बन्ध से रहने वाले गुणों कर्मों का भी योगज प्रत्यक्ष होता है ।

आत्ममनसोः संयोगविशेषात् संस्काराच्च स्मृति । ६ ।

आत्मा मन के संयोग विशेष से और संस्कारों से स्मृति होती है ।

स्वप्नान्तिकम् । ८ ।

स्वप्न में दृष्ट का भी आत्म मन के संयोग विशेष से ज्ञान और स्मृति होती है ।

धर्मांच्च । ९ ।

द्रव्यों के उपयुक्त धर्मों गुणों से भी स्वप्न होते हैं ।

इन्द्रियदोषात्संस्कारदोषाच्चाविद्या । १० ।

इन्द्रियों के दूषित ज्ञान से और दूषित संस्कारों से अविद्या होती है ।

तद्दुष्टज्ञानम् । ११ ।

वह इन्द्रिय-जन्य ज्ञान दुष्ट है।

अदुष्टं विद्या । १२ ।

दोषों-क्लेशों से रहित ज्ञान ही विद्या है। विवेक है।

आर्षं सिद्धदर्शनं च धर्मेभ्यः । १३ ।

ऋषियों और सिद्धों के दर्शन योगज धर्म से होते हैं। इति

यह दर्शनों की योग प्रक्रिया है। योग दर्शन तो है ही योग प्रक्रिया। उसका ही सबने पोषण किया है। योगज प्रत्यक्ष से ही कल्याण है। केवल तर्क से नहीं। ऐसा दर्शनों का अभिप्राय है।

छह दर्शनों में से चारदर्शनों में योग का विधान उपरिलिखित पृष्ठों में निर्दिष्ट है। योग दर्शन में तो योग ही योग वर्णित है जिसका विस्तृत ब्यौरा स्वामी जी की अज्ञातजीवनी में स्थानस्थान पर उल्लिखित है इस प्रकार योग की प्रक्रिया तथा महिमा का पाँचों दर्शनों में गुणगान हुआ है।

श्रीमद्भागवत में योग-साधना

स्कन्ध ११

वासे बहूनां कलहो भवेद् वार्ता द्वयोरपि ।
एक एव चरेत्तास्मात् कुमार्यां इव कंकणः ।१०।
मन एकत्र संयुञ्ज्याज्जितश्वासो जितासनः ।
वैराग्याभ्यास योगेन ध्रियमाणमतन्द्रितः ।११।
तस्मिन् मनो लब्धपदं यदेतत्,
छनैश्शनैर्मुचति कर्म रेणून् ।
सत्त्वेन वृद्धेन रजस्तमश्च,
विधूय निर्वाणमुपैत्यनिन्धनम् ।१२।
तदैवमात्मन्यवरुद्धचित्तो, न वेद किंचिद् बहिरन्तरं वा।
यथेषुकारो नृपतिं व्रजन्तमिषौ गतात्मा न ददर्श पार्श्वे
। १३ ।

एकचार्यनिकेतः स्यादप्रमत्तो गुहाशयः ।
अलक्ष्यमाण आचारैर्मुनिरेकोऽल्पभाषणः ।१४।

गृहारम्भोऽतिदुःखाय, विफश्लचाध्रुवात्मनः ।
सर्पः परकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते ।।१५।।

—अध्याय ९

अहिंसा सत्यमस्तेयमसंगो ह्रीरसंचयः ।
आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाभयम् ।३३।

शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धातिथ्यं मदर्चनम् ।
तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम् ।३४।

एते यमाः सनियमाः उभये द्वादश स्मृताः ।
पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहन्ति हि ।३५।

शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इन्द्रियसंयमः ।
तितिक्षा दुःखसम्मर्षो जिह्वोपस्थजयो धृतिः ।३६।

दण्डन्यासः परं दानं कामत्यागस्तपः स्मृतम् ।
स्वभाव-विजयः शौर्यं सत्यं च समदर्शनम् ।३७।

ऋतं च सूनृता वाणी कविभिः परिकीर्त्तिता ।
कर्मस्वसंगमः शौचं, त्यागः सन्न्यास उच्यते ।३८।

धर्मं दृष्टं धनं नृणाम्, यज्ञोऽहं भगवत्तमः ।
दक्षिणा ज्ञानसन्देशः, प्राणायामः परं बलम् ।३९।

भगो म ऐश्वरो भावो, लाभो मद्भक्तिरुत्तमा ।
विद्यात्मनि भिदा बोधो, जुगुप्सा ह्रीरकर्मसु ।४०।

किं वर्णितेन बहुना लक्षण गुणदोषयोः ।
गुण-दोष दृष्टिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः ।४५।

सम आसन आसीनः, समकायो यथासुखम् ।
हस्तावुत्संग आधाय, स्वनासाग्रकृतेक्षण ।३२।

प्राणस्य शोधयेन्मार्गं, पूरक-कुम्भक-रेचकैः ।
विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः ।३३।

हृद्यविच्छिन्नमोंकारं, घण्टानादं बिसोर्णवत् ।
प्राणेनोदीर्य तत्राथ, पुनः संवेशयेत् स्वरम् ।३४।

एवं प्रणवसंयुक्तं, प्राणमेव समभ्यसेत् ।
दशकृत्वस्त्रिषवणं, मासादर्वाग् जितानिलः ।३५।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो, मनसाकृष्य तन्मनः ।
बुद्ध्या सारथिना धीरः, प्रणयेन्मयि सर्वतः ।४२।

तत्सर्वव्यापकं चित्तम्, आकृष्यैकत्र धारयेत् ।
नान्यानि चिन्तयेद् भूयः, सुस्मितं भावयेन्मुखम् ।४३।

तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत् ।
तच्च त्यक्त्वा मदारोहो,न किञ्चिद पिचिन्तयेत् ।४४।

एवं समाहितमतिः, मामेवात्मनात्मनि ।
विचष्टे मयि सर्वात्मन्, ज्योतिर्ज्योतिषि संयुतम् ।४५।

ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण, युञ्जतो योगिनो मनः
संयास्यत्याशु निर्वाणं, द्रव्यज्ञान-क्रिया भ्रमः ।४६।

अध्याय १४

पंचदशोऽध्यायः

जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः ।
मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः ।१।

सिद्धयोऽष्टादश प्रोक्ता, धारणायोगपारगैः ।
तासामष्टौ मत्प्रधाना, दशैव गुणहेतवः ।३।

अणिमा, महिमा, मूर्तेर्लघिमा, प्राप्तिरिन्द्रियैः ।
प्राकाम्यं श्रुतदृष्टेषु, शक्तिप्रेरणमीशिता ।४।

गुणेष्वसंगो वशिता, यत्कामस्तदवस्यति
एता मे सिद्धयः सौम्य, अष्टावौत्पत्तिका मताः ।५।

अनूर्मिमत्त्वं देहेऽस्मिन्, दूरश्रवण दर्शनम् ।
मनोजवः कामरूपं, परकायप्रवेशनम् ।६।

स्वच्छन्दमृत्युर्देवानां सहक्रीडानुदर्शनम् ।
यथासंकल्पसंसिद्धिराज्ञाप्रतिहृता गतिः ।७।

त्रिकालज्ञत्वमद्वन्द्वं परचित्ताद्यभिज्ञता ।
अग्न्यर्काम्बुविषादीनां, प्रतिष्टम्भोऽपराजयः ।८।

एताश्चोद्देशतः प्रोक्ता, योग धारण सिद्धयः ।
यया धारणया या स्याद्, यथा वा स्यान्निबोधमे ।९।

भूतसूक्ष्मात्मनि मयि, तन्मात्रं धारयेन्मनः ।
अणिमानमवाप्नोति, तन्मात्रोपासको मम ।१०।

महत्यात्मन्मयि परे, यथासंस्थं मनो दधत् ।
महिमानमवाप्नोति, भूतानां च पृथक् पृथक् ।११।

परमाणुमये चित्तं, भूतानां मयि रञ्जयन् ।
कालसूक्ष्मार्थतां योगी, लघिमानमवाप्नुयात् ।१२।

धारयन् मय्यंहतत्त्वे, मनो वैकारिकेऽखिलम् ।
सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं, प्राप्ति प्राप्नोति मन्मनाः ।१३।

महत्यात्मनि यः सूत्रे, धारयेन्मयि मानसम् ।
प्राकाम्यं पारमेष्ट्यं मे, विन्दतेऽव्यक्तजन्मनः ।१४।

विष्णौ त्र्यधीश्वरे चित्तं धारयेत् कालविग्रहे ।
स ईशित्वमाप्नोति, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ चोदनम् ।१५।

नारायणे तुरीयाख्ये, भगवच्छब्दशब्दिते ।
मनो मय्यादधद् योगी, मद्धर्मा वशितामियात् ।१६।

निर्गुणे मयि ब्रह्मणि, धारयन् विशदं मनः ।
परमानन्दमाप्नोति, यत्र कामोऽवसीयते ।१७।

मय्याकाशात्मनि प्राणे, मनसा घोषमुद्वहन् ।
तत्रोपलब्धा भूतानां, हंसो वाचः शृणोत्यसौ ।१९।

चक्षुस्त्वष्टरि संयोज्य, त्वष्टारमपि चक्षुषि ।
मां तत्र मनसा ध्यायन्, विश्वं पश्यति सूक्ष्मदृक् ।२०।

परकायं विशन् सिद्धः, आत्मानं तत्र भावयेत् ।
पिण्डं हित्वा विशेत् प्राणो, वायुभूतः षडङ्घ्रिवत् ।२३।

मद्भक्तया शुद्ध-सत्त्वस्य, योगिनां धारणाविदः ।
तस्य त्रैकालिकी बुद्धिर्जन्ममृत्यूपबृंहिता ।२८।

जितेन्द्रियस्य दान्तस्य, जितश्वासात्मनो मुनेः ।
मद्धारणां धारयतः, का सा सिद्धिः सुदुर्लभा ।३२।

अन्तरायान् वदन्त्येता, युञ्जतो योगमुत्तमम् ।
मया सम्पद्यमानस्य, कालक्षपणहेतवः ।३३।

जन्मौषधि तपो मन्त्रैयविती हि सिद्धयः ।
योगेनाप्नोति ताः सर्वा नान्यै र्योगगतिं व्रजेत् ।३४।

अध्याय १५

समाहितं यस्य मनः प्रशान्तं, दानादिभिः किं वदतस्य कृत्यम्
असंयतं यस्य मनो विनश्यद्,दानादिभिश्चेदपरं किमेभिः?।४७।

श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ११ अध्याय २३।।

बहुतों के रहने पर कलह होता है। दो में भी बातचीत होती है। इसलिये योगाभ्यासी एकला ही रहता है। जैसे कुमारी एक ही कंकण-कड़ा पहनती है, वह खड़खड़ाता नहीं ।।१०।।

मन को एकान्त देश में साधे। प्राणगति को वश में करें। स्थिर आसन हो। आसन पर पूर्ण विजयलाभ करें। वैराग्य और अभ्यास के योग से मन को सावधानी से वश में करें ॥११॥

भगवान् में मन के स्थिर हो जाने पर मन शनैः शनैः कर्मों की धूल को—भोगों को छोड़ देता है। उसके भोग समाप्त हो जाते हैं। सत्त्व गुण के बढ़ने पर रजोगुण और तमोगुण दूर हटाकर, प्रभावहीन करके ईंधन-रहित अग्नि के समान मन मर जाता है। अक्रिय हो जाता है। लय को प्राप्त हो जाता है ॥१२॥

उस समय आत्म तत्त्व में चित्त का निरोध करके अन्दर या बाहर की किसी बात का भी भान नहीं होता है। जैसे बाण बनाने वाला तन्मयता के कारण सवारी के साथ जाने वाले राजा को भी नहीं जानता है। पास में होते हुए को भी नहीं देख पाता है ॥१३॥

योगाभ्यासी मुनि अकेला रहे। स्थान-मकान न बनाये। सावधान हो, किसी गुफा में आसन जमाये। उसकी योगचर्या को भी कोई जान न पाये। अल्पभाषी रहे। एकाकी रहे ॥१४॥

घर का बनाना अत्यन्त दुःख का कारण होता है। चञ्चल स्वभाव से वह विफल रह जाता है। योगी सांप की तरह दूसरे के घर में घुस कर सुख पाता है ॥१५॥

अध्याय ६

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, असंग, संकोच, लज्जा, अपरिग्रह, भगवान् पर भरोसा, ब्रह्मचर्य, मौन, धीरता, क्षमा, अभय, शौच, जप, तपः, हवन, श्रद्धा, आतिथ्य, भगवान् का अर्चन-ध्यान, तीर्थ भ्रमण, परोपकारेच्छा, सन्तोष, आचार्य के समीप रहना, यह नियमों सहित यम हैं। दोनों १२-१२ हैं। तात ! यदि पुरुष इनका परिपालन करे तो यही कामधुक् हैं। ॥३३-३४-३५॥

बुद्धि की आत्म तत्त्व में निष्ठा शम है। इन्द्रियों पर काबू पाना संयम है। दुःखों का सहन करना तितिक्षा है। जिह्वा और उपस्थ को जीतना, स्वाद और काम पर विजय पाना धृति है ॥३६॥

किसी को दंड न देना सबसे बड़ा दान है। कामनाओं का त्याग तप है। अपने मनोभाव को जीतना बहादुरी है। सबको समान भाव से देखना सत्य है ॥३७॥ कवियों ने सच्ची वाणी को ऋत कहा है। कर्मों में न फसना शौच है। सब छोड़ना त्याग हैं ॥३८॥ धर्म ही मनुष्यों का

यथेष्ट धन है। भगवान् ही यज्ञ है, अर्थात् भगवान् का भजन ही यज्ञ है। ज्ञान का सन्देश ही दक्षिणा है। भजन के द्वारा विवेक प्राप्त करें। प्राणायाम ही परम बल है ॥३६॥ सदा ईश्वर भाव में रत रहना ही ऐश्वर्य है। भगवान् की उत्तम भक्ति ही महा लाभ है। आत्मा को प्रकृति से अलग जान लेना बोध है। अकर्म से दूर रहना जुगुप्सा है ॥४०॥ गुण-दोष का कहां तक लक्षण बताया जाए, गुणों-दोषों को देखते रहना ही दोष है। दोनों से अलग रहना ही गुण है ॥४५॥

समतल पर आसन जमाये। सुखपूर्वक काया को सम रखे। दोनों हाथों को गोद में रखे। अपनी नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखे। कुछ दिखाई न दे।३२। प्राण के मार्ग को शोधे। इसका उपाय पूरक, कुम्भक और रेचक है। रेचक, कुम्भक और पूरक के विपरीत क्रम से भी जितेन्द्रिय हो अभ्यास करे ॥३३॥ हृदय में अटूट तार से 'ओं' का जाप करे। घण्टानाद के समान उसी में रम जाये। कमल नाल के तन्तु के समान उसमें लगा रहे। घण्टे की झंकार के समान 'ओं' की तार बनी रहे। प्राण के साथ भी 'ओं' को चलाये सांस सांस में 'ओं' जपे ॥३४॥ प्राण से मिलाकर 'ओं' जाप का अभ्यास करे। दिन में तीन वार दस-दस ओंकार सहित प्राणायाम करे। एक मास में प्राण वश में हो जाता है ॥३५॥

इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषय से हटाकर मन में लय करदे। प्रत्याहार सिद्ध होने पर धीर योगाभ्यासी बुद्धि सारथि के द्वारा भगवद्‌भाव में शब्द छोड़ भागवत ज्ञान में सर्वथा लीन हो जाये ॥४२॥ सब में जानें वाले इस सर्व व्यापक से चित्त को खेंचकर एक स्थान पर ठहराये। फिर अन्य कुछ चिन्तन न करे। मुख पर सदा मुस्कान रहे ॥४३॥ मन के स्थिर हो जाने पर आकाशतत्त्व में चित्त को धारण करे। उसको भी छोड़कर आत्म तत्त्व में लगे, अन्य कुछ भी न सोचे ॥४४॥

इस प्रकार धारणा के उपरान्त समाहित मन, समाहित बुद्धि हो आत्मा में परमात्मा का भान करे। ज्योति में ज्योति व्याप्त हो रही है ॥४५॥

इस प्रकार तीव्रातितीव्र ध्यान में मग्न योगी का मन निर्वाण को—प्रलय को प्राप्त हो जाता है। द्रव्य, ज्ञान और क्रियाओं की भ्रान्ति भी समाप्त हो जाती है ॥४६॥

—११ स्कन्ध —१४ अध्याय

१५ वां अध्याय—योग में लगे जितेन्द्रिय और श्वास पर वश पाने

वाले योगी को सिद्धियां उपस्थित होती हैं ॥१॥ सिद्धियां १८ कहीं हैं। धारणायोग में पारंगत योगियों ने यह कहा है। उनमें आठ तो आत्म-तत्त्व ज्ञान प्राप्ति से होती हैं दस सिद्धियों का कारण त्रिगुणवशित्व है ॥३॥ (१)अणिमा,(२)महिमा,(३)मूर्ति की लघिमा,(४)इन्द्रियों से सूक्ष्म,व्यवहित विप्रकृष्ट की प्राप्ति,(५)सुनी देखी का यथेच्छ लाभ,(६) शक्ति को प्रेरित करना ईशिता सिद्धि है ॥४॥(७)त्रिगुणों में न फंसना वशिता सिद्धि है। (८)इच्छा का व्याघात न होना कामावसायित्व सिद्धि है। सोम्य ! यह आठ सिद्धियां योग-सामर्थ्य से होती हैं ॥५॥

इस देह में उद्वेगों का न होना, दूर का सुनना, दूर-दर्शन, मन के समान वेगवान्, सुन्दर कामदेव सा रूप, दूसरे के मृत शरीर में प्रवेश ॥६॥ इच्छा-मृत्यु, पाँचों देव सूक्ष्म भूतों का सम्मिश्रण, सृष्टि रचना का दर्शन, संकल्प सिद्धि, राजाओं के समान सर्वत्र स्वतन्त्रता से पहुंचना ॥७॥ तीनों काल को जानना, द्वन्द्वों के प्रभाव से रहित होना, पर चित्त का ज्ञान, अग्नि, सूर्य, जल, विष आदि के प्रभाव को रोकना, उनसे पराजित न होना अर्थात् भूतजयी होना ॥८॥ योग धारणा की इन शक्तियों को नाम लेकर बता दिया है। जो जिस धारणा से होती है, जिस प्रकार होती है उसे भी समझ लो ॥९॥ सूक्ष्म भूतों में, आत्मा में और परमात्मा में तन्मय होकर मन को संयत करें, तो अणिमा सिद्धि प्राप्त होती है। ये योगी तन्मात्रों पर संयम का प्रयोग करते हैं ॥१०॥ महान् आत्मा परमात्मा में संस्थान पर संयम के द्वारा जो मन को धारण करते हैं उन्हें महिमा नाम की सिद्धि प्राप्त होती है। पञ्चभूतों पर संयम का प्रयोग करने से भी महिमा सिद्धि प्राप्त होती है ॥११॥

भूतों के परमाणु में चित के संयम धारण द्वारा, काल की सूक्ष्मता के प्रयोजन से 'लघिमा' सिद्धि को प्राप्त करता है ॥१२॥ मनस्तत्त्व के विकार अहंकार तत्त्व में निखिल इन्द्रियों की सत्ता पर संयम प्रयोग करने से 'प्राप्ति' नाम की सिद्धि प्राप्त होती है ॥१३॥ सूत्र सम व्याप्त महत्‌तत्त्व संयम का प्रयोग कर मन को धारण करे तो 'प्राकाम्य' सिद्धि को प्राप्त करता है जिससे ब्रह्म रचित सब पदार्थों को अव्यक्त सृष्टि से प्राप्त कर सकता है ॥१४॥ व्यापक काल में संयम का प्रयोग करने से 'ईशित्व' नामक सिद्धि प्राप्त होती है। जिससे आत्मा और प्रकृति को प्रेरित कर सकता है ॥१५॥ अमात्र भगवान् के चतुर्थ पाद में योगी 'संयम' का प्रयोग करने से 'वशिता' नाम की सिद्धि को प्राप्त करता है ॥१६॥

निर्गुण, त्रिगुण से पृथक् निष्कल पर ब्रह्म में जो संयम का प्रयोग करता है वह परम आनन्द को प्राप्त करता है, जिससे सब कामनाओं का क्षय हो जाता है ॥१७॥ आकाश की तन्मात्रा के सम्बन्ध में संयम करने वाला हंस योगी सब प्राणियों की बोली समझ लेता है ॥१९॥ सूर्य और चक्षु में संयम का प्रयोग करके योगी सारे विश्व को देखता है ॥२०॥ सिद्ध योगी पर काया प्रवेश के समय, पर शरीर में अपने आत्मा की प्रवेश की धारणा कर, अपने शरीर को छोड़कर प्राणवायु सहित पर मृत शरीर में भौंरे के समान प्रवेश कर जाता है ॥२३॥

परमात्मा की भक्ति से शुद्ध सत्त्व वाले, संयम प्रयोग जानने वाले की बुद्धि त्रिकाल की जानने वाली हो जाती है। जन्म-मृत्यु को भी जानती है ॥२८॥ जितेन्द्रिय, मन का दमन करने वाले, श्वास-प्रश्वासजयी प्रभु भजन करने वाले योगी को कोई भी सिद्धि दुर्लभ नहीं है ॥३२॥ उत्तम योग साधक के लिए सिद्धियाँ भी पीछे विघ्न हो जाती हैं। प्रभु को प्राप्त करने वाले के लिए तो यह समयनाश ही है ॥३३॥

जन्म से, औषधि से, तप से, मन्त्र से जितनी भी सिद्धियां हैं, योग से उन सब को प्राप्त कर लेता है। पर जन्म आदि से प्राप्त होने वाली सिद्धियों से योग को प्राप्त नहीं होता है ॥३४॥ अध्माय १५

जिसका मन समाहित हो गया, प्रशान्त हो गया, फिर बताओ दान आदि से उसको क्या मिलेगा ? जिसका मन वश में नहीं, चंचलता से नष्ट हो रहा है, फिर दान आदि से भी उसे क्या मिलता है। अर्थात् योग साधना ही परम ध्येय है ॥४७॥ श्रीमद्‌भागवत,स्कन्ध११अध्याय २३॥

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में योग साधना

श्री गीता के अठारहों अध्यायों में गीता को योगशास्त्र कहा गया है। कर्म योग नहीं, ध्यान योग से ही अभिप्राय है। कर्म योग अर्थात् निष्काम कर्म तो एक ही अध्याय में कहा है। यह मनन और निदिध्यासन का विषय है। यहाँ केवल गीता की अत्यन्त संक्षिप्त योग साधन प्रक्रिया ही दिखानी अभीष्ट है। गीता तो सारी ही ध्यान योग से भरी है। योग-दर्शन का व्यास भाष्य और गीता दोनों ही तो भगवान् व्यास की रचना है। भेद कैसे हो सकता है :—

अर्जुन उवाच—चंचलं हि मन कृष्ण, प्रमाथि बलवद्‌दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये, वायोरिव सुदुष्करम् ।६-३४।

श्री भगवानुवाच-असंशयं महाबाहो, मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येण च गृह्यते ।६-३५।

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ।६-३६।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ।६-१०।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छितं नातिनीचं चैलाजिन कुशोत्तमम् ।६-११।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद् योगमात्मविशुद्धये ।६-१२।

समं काय-शिरो-गीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रंस्वं दिशश्चानवलोकयन् ।६-१३।

प्रशान्तात्मा विगतभीः ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्पर ।६-१४।

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी नियत-मानसः ।
शान्ति निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ।६-१५।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति, न चैकान्तमनश्नतः ।
न चास्ति स्वप्नशीलस्य, जागतो नैव चार्जुन।६-१६।

युक्ताहारविहारस्य, युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगो भवति दुःखहा ।६-१७।

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निस्पृहः सर्वकामेभ्यः युक्त इत्युच्यते तदा ।६-१८।

यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य, युंजतो योगमात्मनः ।६-१६।

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ।६।२०।
युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्म संस्पर्शम् अत्यन्तं सुखमश्नुते ।६।२८।
तपस्विभ्योऽधिको योगी,ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी,तस्माद्योगी भवार्जुन ।६।४६।

अर्जुन ने भगवान् से प्रश्न किया—"भगवन् ! मन बड़ा चंचल है । प्रबल है । शक्ति सम्पन्न मजबूत है । उसको वश में करना ऐसा ही है, जैसे वायु को बान्धना ६ । ३४ ॥

श्री भगवान् बोले—"महाबाहो ! निस्सन्देह है । चंचल मन का निग्रह कठिन है । पर हे कुन्ति-पुत्र ! अभ्यास और वैराग्य से यह वश में आता है ॥३५॥ असंयमी व्यक्ति योग को प्राप्त नहीं कर सकता, यह तो मैं मानता हूं । तू असंयमी नहीं । वशी है । यत्न करने पर उपायों से वशी मन को वश में ला सकता है ॥३६॥ योगी सदा एकान्त में बैठकर मन को वश में लावे । अकेला रहे । चित्त को वश में रखे । किसी की आकांक्षा न करे । असंग्रही हो ॥६-१०॥ पवित्र स्थान में अपना आसन जमा कर स्थिर बैठे । न बहुत ऊंचे पर बैठे, न बहुत नीचे । कपड़ा, मृगचर्म, कुशायें ऊपर-ऊपर बिछाये ।११। आसन पर जमने पर मन को एकाग्र करे । मन और इन्द्रियों की क्रियाओं को वैराग्य से रोके । आसन पर बैठकर आत्मा के मल धोने के लिए योगाभ्यास करे ॥१२॥ शरीर, सिर और गर्दन को एक सीध में सम रखे । अचल और स्थिर रहे । अपनी नासिका के अग्र भाग पर शून्य दृष्टि रखे । दिशाओं को सर्वथा न देखे ॥१३॥ आत्मा प्रशान्त रहे । निर्भय हो बैठे । प्रभु की गोद में कैसा भय! ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे । मन पर संयम रखे । भगवान् का ही ध्यान रहे । योग में लगे ॥१४॥ मन पर नियमन करने वाला योगी सदा समाहित रहे । परमात्मा में स्थित हो । परम शान्ति, मुक्ति सी शान्ति को पावे ॥१५॥ अधिक खाने वाला योग नहीं कर सकता । आरम्भ काल में सर्वथा न खाने वाला भी योग नहीं कर सकता अतिशयन करने वाला भी योग नहीं कर सकता । विषयों में जागने वाले का भी योग नहीं है ॥१६॥ योगी का सा आहार करने वाला, योगी की सी चेष्टाएं करने वाला, योगी की सी स्वप्न और बोध अवस्था वाला योगी ही क्लेशों-दुःखों का

नाश करता है ॥१७॥ जब भली प्रकार नियम में लाया गया चित आत्मा में स्थिर हो जाता है तब सब अन्य इच्छाओं को छोड़ देता है, तब योगी नाम पाता है ॥१८॥ जैसे निवात में रखे दीपक की लौ नहीं हिलती, ऐसे हीं योगी का चित्त भी निश्चल होता है। ऐसा योगी योग में आत्मा को पाता है ॥१९॥ जब योगाभ्यास से चित्त निरुद्ध हो जाता है, और आत्मा अपने आप को अपने आप ही, विना चित के देखता है। तब आत्म में तुष्ट हो जाता है। स्वस्थ हो जाता है ॥२०॥ सदा इस प्रकार अभ्यास करने वाले योगी के कल्मष,कर्म, अविद्यादि क्लेश ध्वस्त हो जाते हैं, सहज भाव से तब ब्रह्मानन्द के परमानन्द को प्राप्त करता है ॥२८॥

तपस्वियों से योगी अधिक है। ज्ञानियों से भी योगी अधिक है। निष्काम कर्म करने वालों से भी योगी अधिक है। इसलिए, हे अर्जुन ! योगी बन ॥६. ४६॥

आत्मचरित्र की प्रामाणिकता

१. **इस आत्मचरित्र का उल्लेख**—सन् १८८६ में अर्थात् ऋषि के कैवल्य के लगभग केवल दो वर्ष पीछे ब्रह्म समाज के प्रचारक नगेन्द्र नाथ चटर्जी ने-'महात्मा दयानन्देर संक्षिप्त जीवनी' नामक छोटा-सा ग्रन्थ प्रकाशित किया था। वह बंग भाषा में और सम्भवतः आर्य भाषा की दृष्टि से भी सर्वप्रथम जीवनी है। बंगाब्द १२९३ में श्री मनिमोहन रक्षित द्वारा कलकत्ता २१०।१ कार्नवालिस स्ट्रीट के विक्टोरिया प्रेस में मुद्रित है। आजकल अप्राप्य है। केवल एक प्रति चैतन्य लायब्रेरी कलकत्ता में है। उपसंहार में लिखते हैं—

"दयानन्द सरस्वती यदि यूरोप या अमरीका के आदमी होते तो शायद उनके परलोक गमन के एक सप्ताह में ही सुविस्तृत जीवन वृतान्त जन साधारण के समक्ष आ जाता। उन्होंने कई वर्ष हुए इहलोक परित्याग किया था। इस हतभाग्य देश में आज तक भी उनका जीवन-पुस्तक नहीं निकला। सौभाग्य की बात है—**'दयानन्द अपने जीवन के बारे में लिखाकर चले गए। नहीं तो उनके बारे में कुछ भी नहीं मिलता।'**

२. **आत्मचरित्र अब तक क्यों नहीं मिला**—इसी आत्मचरित्र को स्वामी जी लिखा गये थे और साथ ही जीवनकाल में मुद्रित न करने को कह गए थे। इस आत्मचरित्र को पढ़कर प्रकाशित न कराने का कारण समजना कठिन नहीं :—स्वामी जी अपनी योगसिद्धियों का खुला प्रचार नहीं करना चाहते थे।

३ **अंग्रेजी सरकार की कड़ी निगरानी**—सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य समर में ऋषिवर ने क्रान्ति की पूरी भूमिका निभाई।

अंग्रेज सरकार के विद्रोही होने के नाते उनका यह रहस्य खुलना उनके तथा उनके कार्य के लिए घातक सिद्ध होता। इतना गुप्त रहने पर भी अंग्रेजी सरकार को उन पर पूरा संदेह हो गया था।

सन् १८७२-७३ में ऋषि कलकत्ता में थे। लाट पादरी प्रायः उनके भाषणों में उपस्थित रहते और प्रधान बनते थे। आलोचना के समय स्वामी जी कह दिया करते थे—"अंग्रेजी राज्य में मुझे विचारों के प्रकट करने में किसी प्रकार का भय नहीं है।" पादरी महोदय ने प्रभावित हो नार्थ ब्रुक को सुझाव दिया—'महात्मा बड़े काम का व्यक्ति है, अपने पक्ष में करने से लाभ पहुँचेगा'।

निम्न प्रामाणिक व रेकार्ड की गई भेंट हुई :—

वायसराय ने स्वामी जी से पूछा—'पण्डित दयानन्द ! मुझे सूचना मिली है कि आपके द्वारा दूसरे मत-मतान्तरों व धर्मों की कड़ी आलोचना, उनके हृदय में क्षोभ उत्पन्न करती है। विशेषतः मुस्लिम और ईसाई जनता के। क्या आप अपने शत्रुओं से किसी प्रकार का खतरा अनुभव करते हैं। अर्थात् क्या आप सरकार से अपनी सुरक्षा का कोई प्रबन्ध चाहते हैं ?

स्वामी दयानन्द—'मुझे अपने विचारों के प्रचार करने की अंग्रेजी राज्य में पूरी स्वतन्त्रता है। मुझे व्यक्तिगत रूप से किसी प्रकार का खतरा नहीं'।

वायसराय—'यदि ऐसा ही है तो क्या आप अपने देश में अंग्रेजी शासन द्वारा उपलब्ध उपकारों का भी वर्णन किया करेंगे ? और अपने व्याख्यानों के प्रारम्भ में जो-ईश प्रार्थना आप किया करते हैं उसमें देश पर अखण्ड अंग्रेजी राज्य के लिए भी प्रार्थना करेंगे' ?

स्वामी दयानन्द—'मैं ऐसी किसी बात को मानने में असमर्थ हूं, क्योंकि यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि मेरे देशवासियों को अबाध राजनीतिक उन्नति और संसार के राज्यों में समानता का दर्जा पाने के लिए शीघ्र पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। ईश्वर से नित्य सायं-प्रातः उनकी अपार कृपा से इस देश की विदेशियों की दासता से मुक्ति की ही प्रार्थना करता हूं'।

सुनकर वायसराय घबरा गए। वार्ता बन्द कर दी। लार्ड नार्थ ब्रुक ने यह घटना अपनी साप्ताहिक डायरी में लन्डन भेजी, इंडिया आफिस मे। मलका सरकार के सैक्रेटरी आफ स्टेट को लिखा कि, उसने इस बागी फकीर की कड़ी निगरानी करने के लिए गुप्तचर नियुक्त करने के आदेश दे दिए हैं।'

(दीवान अलखधारी अम्बाला निवासी के सौजन्य से प्राप्त लेख के आधार पर)

सरकार ने जोधपुर में षड्यन्त्र द्वारा महर्षि को हमसे सदा के लिए पृथक कर दिया—देखो म. दत्त. जी. च. पृ. ३४०—'अलीमर्दान खां का असद्भाव' शीर्षक।

४. **५७ के क्रांतिकारियों से सम्बन्ध**—नाना साहब की टंकारा स्थित समाधि यह सिद्ध करती है कि नाना साहव और उनके परिवार के साथ ऋषि का पूरा गुरु शिष्य का सम्बन्ध था। देखो पृष्ठ११७, ११५

—The Times of India, Sunday, May 25, 1969

—नवजीवन, ३१ जुलाई अंक में शिवशंकर मिश्र का लेख

५. **सत्यार्थ प्रकाश में नाना के महल के ध्वंस का उल्लेख**—नाना साहब के बिठूर स्थित महल के ध्वंस की घटना का सत्यार्थ प्रकाश के ११ वें समुल्लास में उल्लेख इस धारणा की निर्णायक पुष्टि करता है।

देखो पृ० १०३

६. **अंग्रेजी इतिहास की साक्षी**—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के महामंत्री श्री ओम प्रकाश जी त्यागी (भूतपूर्व संसद् सदस्य) ने भी बताया कि किसी अंग्रेजी इतिहास में पढ़ा है कि—"एक लम्बे-चौड़े शरीर वाला साधु नर्मदा के किनारे साधु सन्न्यासियों का संगठन कर रहा था।" सन्न्यासी इसका प्रमाण भी यथावसर निकाल देंगे।

सन् ५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम में सशरीर भाग लेने के उचित प्रमाण यथावसर आगे पढ़ने को मिलेंगे। देखो पृष्ठ १०३ से १२५ तक

७. वह योगसिद्धियों से प्रभावित कर वैदिक धर्म का प्रचार नहीं चाहते थे, अपितु वेद के ईश्वर कृति होने से तथा अकाट्य तर्कों के बल पर ही जनता की वैदिक धर्म में आस्था उत्पन्न करना चाहते थे।

इत्यादि जीवनी को प्रकाशित न करने के कथन में अनेक कारण हैं।

थियोसोफिस्ट के आत्म चरित्र का प्रमाण—

I felt a strong desire to visit the surrounding mountains with their eternal snow and glaciers, inquest of true ascetics, I had heard of but as yet had never met. I was determined, come what might. to as certain whether some of them did or did not live there as rumoured,

—मैं प्रबल इच्छा का अनुभव करता था। चारों ओर के पहाड़ों पर जाने की जिन पर अनादि काल से हिम पड़ी है, और हिम की चट्टानें हैं। वहाँ मैं योगियों की खोज करूंगा। जिनके विषय में सुना है पर आज तक मिले नहीं। मैंने दृढ़ सङ्कल्प किया, कोई भी कैसा ही संकट आया, निश्चय करूंगा, उनमें से कोई हैं या नहीं, जैसा कि जनवाद है।

ऋषि का दृढ़ संकल्प व्यर्थ नहीं जा सकता। उन्होंने काश्मीर से नेपाल तक सारे हिमालय की पूर्णतः छान-बीन की।

५. आत्मचरित्र की ऐतिहासिकता और भौगोलिकता—इस दृष्टि से अध्ययन करते हुए, तीर्थों और हिमालय की यात्रा करते हुये मैं इस निश्चित परिणाम पर पहुँचा हूं कि ऋषि-उल्लिखित हिमालय के स्थानों में आज तक किसी भी जीवनी लेखक ने उन तीर्थ स्थानों को जाकर नहीं देखा। न स्वामी सत्यानन्द जी हिमालय पर गये, न बाबू देवेन्द्रनाथ जी और पं० लेखराम जी आदि भी नहीं ही गये। पं० लेखराम जी ने तो थियोसोफिस्ट के मिले हुए हिन्दी के पृष्ठों अथवा अनुवादों को ही मिश्रित कर लिख दिया। श्री देवेन्द्र बाबू और स्वामी सत्यानन्द जी ने भी अपनी साहित्यिक कल्पना के आधार पर यात्रा का कष्टबाहुल्य दिखाने मात्र के लिए आलंकारिक वर्णन कर दिया है।

६. आज तक की ऋषि जीवनियों में उल्लेख—मग्नम्—श्री पं० लेखराम जी, श्री पं० भगवद्दत जी एवं श्री स्व० सत्यानन्द जी तीनों ने ही स्वा० बद्री नारायण से अलखनन्दा की१२ घण्टे की यात्रा में 'मग्नम्' स्थान का भी उल्लेख किया है। मग्नम् बद्रीनारायण से १३१ मील पर है तथा बद्रीनारायण और कैलास के मध्य में स्थित है। इसका विस्तृत लेखा आगे यथा प्रकरण पढ़िये।

७. **त्रियुगी नारायण**—थियोसोफिस्ट आत्मचरित्र के हिन्दी अनुवाद में लिखा है, "शिवपुरी से केदारघाट होता हुआ गुप्तकाशी आया। वहाँ कुछ दिन ठहरकर त्रियुगी नारायण, गौरी कुण्ड और भीम गुफा प्रभृति के दर्शन करके मैं फिर केदारघाट चला आया। (केदार घाट से) लौटते हुए तुंगनाथ की चोटी पर चढ़ गया।" इत्यादि।

यहाँ पर केदार घाट से घूमते-घामते त्रियुगी नारायण आए गए और फिर एकदम तुंगनाथ की चोटी का उल्लेख किया है।

त्रियुगी नारायण—"गौरी कुण्ड से चार मील—गंगोत्री से पंवाली डांडा पार होकर आने वाले रास्ते पर यह त्रियुगी नारायण गाँव है। सत्य युग में हिमालय पुत्री गौरी का विवाह यहाँ शिवजी से हुआ था। तब से विवाह के होम की आग आज तक जल रही है। यहाँ नहाने के चार कुण्ड हैं। जिनमें बहुत से निर्विष सर्प रहते हैं।"

महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन लिखित 'हिमालय-परिचय' पृ० ३३६.

—"पर्वतशिखर पर भगवान् नारायण का मन्दिर है। नारायण भू देवी तथा लक्ष्मी देवी के साथ विराजमान हैं। एक सरस्वती गंगा की धारा यहाँ है जिससे चार कुण्ड बनाए हुए हैं। ब्रह्म कुण्ड, रुद्र कुण्ड, विष्णु कुण्ड और सरस्वती कुण्ड। मन्दिर में अखण्ड धूनि जलती है। यात्री धूनि में हवन करते हैं। कहते हैं यहाँ शिव पार्वती का विवाह हुआ था।"

इसी बात को इस आत्मचरित्र (अज्ञात जीवनी) में इस प्रकार लिखा है :— 'गंगोत्री से त्रियुगी नारायण आधा योजन की दूरी पर है। वहाँ से आगे अगस्त्य मुनि और गुप्तकाशी है।" यह कोई पर्वत मार्ग मालूम होता है क्योंकि "आजकल तो सड़क मार्ग से, त्रियुगी नारायण १२० मील की दूरी पर है।

—राहुल सांस्कृत्यायन के 'हिमालय-परिचय' से पृ० ३७०. इस आत्मचरित्र में इन चारों कुण्डों का भी उल्लेख है। "रुद्र कुण्ड में स्नान, विष्णु कुण्ड में मार्जन, ब्रह्मकुण्ड में आचमन तथा सरस्वती कुण्ड में तर्पण होता है।" कुण्डों को स्वच्छ रखने का कैसा अच्छा नियम है। इस आत्म चरित्र में वर्णित यात्रा ही शुद्ध है। लेखकों का मक्खी मार यात्रा वर्णन नहीं।

तुंगनाथ—तुंगनाथ त्रियुगी नारायण से यात्रा के मार्ग पर ७० मील की दूरी पर है। उसका भी पर्वतीय छोटा मार्ग है। गुप्तकाशी से डेढ़ मील नाला। नाला से सीधे ऊखी मठ जाते हैं। ऊखीमठ से तुंगनाथ चौदह मील है। १२०७१ फुट की ऊँचाई है। इसे चन्द्रशिला भी कहते हैं।

केदारघाट—थ्योसोफिस्ट-आत्मचरित्र में ऋषि केदारघाट से तुंग-नाथ पहुँचे हैं। कभी किसी ने विचारा केदारघाट किधर है? तुंगनाथकितनी

दूर है ? कहाँ से कहाँ ऋषि गए होंगे ! केदारनाथ के पास कोई केदार घाट नहीं है। केदारनाथ में नदी ही नहीं घाट कहाँ से आएगा ? केवल साहित्यिक वर्णन से तो यात्रा की खोज नहीं हो सकती। श्री राहुल जी ने 'हिमालय परिचय' के ३४७वें पृ० पर लिखा है :—"बाड़ाहाट को उत्तरी काशी बनाने का पूरा प्रयत्न किया गया है। पूर्व दक्षिण में गंगा जी का प्रवाह, उत्तर में असि गंगा, पश्चिम में वरुणा नदी, इससे पूर्व तरफ केदार घाट, दक्षिण तरफ मणिकर्णिका घाट, मध्य में विश्वेश्वर मन्दिर।" यह है वह केदारघाट जिसकी किसी ने भी आज तक खोज नहीं की।

८. **मानसोद्भेद तीर्थ**—बद्रीनारायण और माना के बीच में है। मानसरोवर का मार्ग इधर से होने से यह नाम पड़ा होगा। ऋषि मानसोद्भेदतीर्थ से ही कैलास गए थे।

देखो इस आत्मचरित्र का पृ० २२२। अन्यत्र किसी ने पूना प्रवचन को छोड़ कैलास-यात्रा की बात तक नहीं कही। पूना प्रवचन में कहा है—"महादेव कैलास के निवासी थे। कुबेर अलकापुरी के रहने वाले थे। यह सब इतिहास केदारखण्ड का है। **हम भी (ऋषिदयानन्द भी) इन सब स्थानों पर घूमे हुए हैं।**" इत्यादि।

—(उपदेश मंजरी—दशम व्याख्यान)

९. अलकापुरी—उपदेश मंजरी पृ० ११६ पर दशम व्याख्यान में लिखा है="जिस पहाड़ पर पुरानी अलकापुरी थी, उस पर भी मैं इस विचार से गया था कि एक बार ही अपना शरीर बर्फ में गलाकर संसार के धन्धों से निवृत्त हो जाऊँ।" पृ० १७१ पर "उपदेश मंजरी" में लिखा है—"बर्फ बहुत पड़ी थी, वहाँ बर्फ लगने से पैर में कुछ तकलीफ हो गई। हिमालय पर पहुँच कर विचार आया कि यहीं शरीर गला दूँ।"

यह घटना अलकापुरी की है। अलकापुरी अलकनन्दा के स्रोत से आगे है। देखो पृ० २६

इस अलकापुरी का परिचय न होने से देवेन्द्रबाबू ने तथा अन्यों ने इस प्रकार लिख दिया—"अलकनन्दा पार करने पर पैर सुन्न हो गए...... मरने की बात सोचकर मैं मन में कुछ घबराया। फिर तुरन्त ही मैंने सोचा ! मैं मरने की क्यों इच्छा करता हूं। क्या ज्ञानानुशीलन में रत रह कर ही जीवन का अन्त करना मेरे लिए जीवन का श्रेष्ठकर्त्तव्य नहीं है।" इत्यादि।

—म. द. जी. च. —पृ० ४७

१० **रामपुर**—रामपुर की स्थिति भी विचारणीय है। रामपुर ५ हैं। ४ के विषय में संशय है, कौन-से हैं। एक रामपुर बिहार में है, उसका तो प्रसंग नहीं है १. केदारनाथ वाला जो श्रीनगर, रानीबाग और अरकणी के बीच में है। २. एक ऊखी मठ और त्रियुगी नारायण के बीच में है। ३. काश्मीर में है। ४. रामपुर रियासत काशीपुर के पास है। गंगोत्तरी केदार और बद्रीनाथ पार्वतीय अवस्थिति से बहुत निकट हैं। मार्ग तीर्थों की दृष्टि से बनाये गये हैं। सीधे पहाड़ी मार्ग से सन्निकट प्रतीत होते हैं। ऋषि को केदार नाथ मध्य का स्थान अति रुचिकर था। २ नं० वाले राम पुर से ही तीनों धामों को पैदल मार्ग गया है। वहीं कहीं शिवपुरी एकांत स्थान पर्वत शिखर पर वे रहे। यह अगस्त्यमुनि गुफा के पास होनाचाहिए सन ५७ वाला रामपुर रियासत है, काशीपुर द्रोण सागर पर रहते समय जाना हुआ होगा। पर्वत यात्रा में तो यह तीन ही विचाराधीन हैं।

गौरी कुण्ड भी अनेक हैं। गंगोत्तरी के पास, त्रियुगी नारायण के पास और कैलाश के पास।

पाठक विचार करें कि सही गवेषणा के अभाव में घटना का कैसा उलट-पुलट अनर्थ हो जाता है। ऋषि का सुनाया आत्मचरित्र परम प्रामाणिक है।

देवेन्द्र बाबू ने महर्षि दयानन्द जीवन चरित्र में लिखा है—भक्तों से बातचीत करते हुए ऋषि ने कहा, "मैं एक बार गंगोत्री से चलकर गंगा सागर तक और एक बार गंगोत्री से रामेश्वर तक गया था।" (पृ० ६२२)

ऋषि ने 'सत्यार्थ प्रकाश' में जिन तीर्थो का खण्डन किया है, वहां अवश्य गये थे। विना देखे खण्डन की उनकी रीति नहीं।

कलकत्ते की काली, कामाक्षा देवी, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, कालियाकन्त, द्वारिकापुरी, सोमनाथ, रणछोड़ जी का मन्दिर, ज्वालामुखी, हिंगल, अमर नाथ, केदार, बद्री, नेपाल, तुंगनाथ, विन्ध्याचल, विन्ध्येश्वरी, मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या, गोवर्धन, कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य।

सत्यार्थ प्रकाश १२ समु० यहाँ की भाषा भी वर्तमान कालिक है वर्णन सजीव है देखभाल कर लिखा है यही प्रमाणित होता है। यही सब इस आत्मचरित्र में है। आगे विस्तृत ऊहापोह पढ़िये।

११. **पं० दीन बन्धु शास्त्री का अध्यवसाय**—अपनी मधुरता, सौजन्यता एवं विद्वत्ता के प्रभाव से ब्रह्म समाज से सुसम्बन्ध बनाये। उनके

उत्सवों में गये व्याख्यान दिये। रवीन्द्र बाबू के शान्ति निकेतन में वेदकथा निरन्तर की। ४० वर्ष तक 'दयानन्द का पगला' बन कर खोज की। तब यह जीवन-रत्न हाथ लगा। जिसकी चर्चा और प्रतीक्षा बराबर वर्षों से हो रही थी।—आर्यसमाज के इतिहास में पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखते हैं :—"पं० दीनबन्धु शास्त्री ने उनकी डायरी के कुछ ऐसे अंश बंगला में 'दयानन्द प्रसंग' नाम से प्रकाशित किये हैं जिनसे बहुत महत्त्व-पूर्ण सूचनाएँ मिली हैं।" पृ० ७४

'बंगाल के आर्यसमाज के पं० दीनबन्धु जी शास्त्री को भी नवीन खोज का श्रेय देना चाहिए।'—पं० आत्मानन्द विद्यालंकार की अप्र-काशित सामग्री। पृ० ८५

आत्मचरित्र की खोज पर बधाई—श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर, श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति तथा परोपकारिणी सभा के मंत्री श्री हरविलास जी शारदा तथा तत्कालीन अन्य आर्य नेताओं ने श्री पं० दीनबन्धु जी की गवेपणा निरति एवं उपलब्धियों की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी तथा पं० जी को इस कार्य के लिए प्रोत्साहित किया था।

१३. अमर हुतात्मा श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने कलकत्ता में इस आत्मचरित्र के हस्त लेखों को खोज न निकालने पर बंगाल के आर्यों को आड़े हाथों लिया था। यह सब बातें कलकत्ता में प्रसिद्ध हैं।

१३. ऊपर के उद्धरणों एवं प्रतीकों से यह स्पष्ट है कि आत्मच-रित्र तथ्यपूर्ण है तथा उन उद्धारणों की व्याख्या है। जो अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। यह ३६ वर्ष की जीवनी प्राय: ऋषि की अवधूत अवस्था की तथा एकाकी विचरण की है, जिसका उल्लेख अन्यों से मिलना कठिन है। पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि बंगाल के मूर्धन्य विद्वानों की प्रार्थना पर ऋषि ने अपनी यह जीवनी स्वयं सुनाई अत: यह जीवनी सर्वथा प्रामाणिक है।

ब्राह्मसमाज और आर्य समाज का संघर्ष

ब्राह्म समाज और आर्य समाज का संघर्ष ही ऋषि के जीवन चरित्र के प्रकाश में आने में बाधक रहा

(१) ऋषि दयानन्द ने ब्राह्मसमाज का पूरा खण्डन किया। वह उनकी जीवनी क्यों देते! देखो सत्यार्थप्रकाश—

प्रश्न—ब्राह्मसमाज और प्रार्थना समाज तो सबसे अच्छे हैं?

उत्तर—......वेद विद्या विहीन लोगों की कल्पना सर्वथा सत्य क्यों कर हो सकती है?......ब्राह्म समाज के उद्देश्य की पुस्तक में साधुओं की संख्या में ईसा, मूसा, मोहम्मद, नानक और चैतन्य लिखे हैं। किसी ऋषि, महर्षि का नाम भी नहीं लिखा है, ये उन्हीं के मतानुसारी मत वाले हैं। —(सत्यार्थ प्रकाश—११ समु०)

(२) उधर ब्रह्मसमाजियों ने भी ऋषि का खण्डन और विरोध आरम्भ किया—

History of Brahma samaj —By Sivanatha Sharsri M.A. Published 1912 A. D.

"In the beginning of 1875—But there was coming in a short time a new rival and a fresh struggle into the field. Pandit Dayananda Saraswati the well krown founder of the Arya Samaj. paid his visit to Lahore in that year, and by his lecture and discussion meetings succeeded in rousing interest in his cause amongst the educated Punjabis.

The successful preaching of the founder of the Arya—Samaj, leading away many, who had been previously attending the Samaj (e. i, Brahma Samaj) meetings made services of Mr. Sen on ce more if possible.

Pandit Dayanand left the station in August and in October. Mr. Sen was called down from the Simla Hills, whither he had come Mr. Sen complied with their earnest request.

nd once more brought fresh enithusiasm to the cause.

The Arya Samaj was dudy organised at Lahore as a rival of the Brahma samaj, during the course of next two years with Lala Mulraj, who had earned his distinction as the fresh Punjabi Prem chand Roy chand Scholars its President. and the new struggle began. P. 400

Pandit Agnihotri, who strongly inclined in favour of the Sadharana Brahma Samaj···published a pamphlet cretecising one of Swami Dayanandas books and also a book of theistic hymns, in the pages of the Birather Hindi, He entered into terrible and mortal conflict with the Arya Samaj.

He(Agnihotri) was ordained as a missionary of the Sadharana Brahma Samaj in 1811

ब्राह्म-समाज का इतिहास-शिवनाथ शास्त्री एम० ए० रचित प्रकाशित १६१२।

सन १८७५ के प्रारम्भ में-एक नया प्रतिद्वन्द्वी और अभिनव संघर्ष थोड़े ही समय में सामने आ रहा था। आर्य समाज के प्रसिद्ध संस्थापक उस वर्ष लाहौर पधारे और अपने भाषणों और शास्त्रार्थों से शिक्षित पंजाबियों को उद्देश्य की पूर्ति के लिए आकृष्ट करने में सफल हुए।

आर्य समाज के संस्थापक के सफल प्रचार ने ब्रह्म समाज की सभाओं में उपस्थिति कम कर दी। और ब्रह्म समाज के सदस्यों को इस बात की आवश्यकता का अनुभव हुआ कि यदि सम्भव हो तो एक बार पुनः सेन महोदय की सेवाओं को उपलब्ध करें। पंडित राज दयानन्द ने लाहौर से अगस्त और अक्टूबर में विदा ली। सेन महोदय को शिमला पर्वत श्रेणी से बुला लिया गया। सेन ने आग्रह पूर्वक की गई प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और एक बार फिर ब्रह्म समाज के लिए उत्साह

उत्पन्न कर दिया। उसी समय अगले दो वर्ष में ही लाहौर में आर्य समाज का संगठन ब्रह्म समाज के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में किया गया।

लाला मूल राज जिन्होंने योग्यता के कारण ख्याति अर्जित की थी जैसी कि पंजाबी विद्वान प्रेमचन्द रायचन्द ने की थी समाज के प्रधान बने और नया संघर्ष प्रारम्भ हुआ। -पृ० सं० ४००

पं०अग्निहोत्री जो साधारन ब्रह्मसमाज के पक्ष में दृढ़ निष्ठ हो गए थे उन्होंने एक ट्रैक्ट (पैम्फलेट) निकाला, जिसमें स्वामी दयानन्द की पुस्तकों तथा वेदमन्त्रों को समालोचना आदरे-हिन्द के पृष्ठों में की। वह आर्य समाज के साथ भयावह संघर्ष में संलग्न हुआ जो उसके लिए घातक सिद्ध हुआ।

अग्निहोत्री १८११ में साधरन ब्रह्म समाज के उपदेशक नियुक्त हुए थे।"

इस सब संघर्ष का अध्ययन कर देवेन्द्र बाबू ने ब्रह्म समाज को आड़े हाथों लिया उन्होंने लिखा—"उन्होंने (ऋषिवर ने) पं० कृपाराम से पूछा कि आपने हमारे व्ययार्थ चन्दा किन किन लोगों से एकत्र किया है?

पं जी ने उन्हें चन्दे की सूची दिखाई तो उसमें केवल दो व्यक्तियों को छोड़कर शेष ब्रह्म समाजी बंगाली थे। महाराज (दयानन्द जी) यह ज्ञात करके कुछ क्षुब्ध हुए, और कहा आप लोगों को इन (ब्रह्मसमाजियों) पर भरोसा नहीं करना चाहिए, ये लोग आज आप के मित्र हैं कल शत्रु हो जायेंगे।"

-म. द. च. पृ० ५३८

"पृ०-४१० पर ब्रह्म समाजियों का अशिष्टाचार लिख मारा 'ब्रह्म-समाजियों ने महाराज से व्यय के २५ रुपये तक ले लिये।'

इतना तीखा प्रहार किया देवेन्द्र बाबू ने। फिर उन को कौन ब्रह्म-समाजी सहयोग देता। यह तो पं० दीन बन्धु जी का ४० वर्ष का अध्ययन-साय एवं तीनों ब्रह्मसमाजों की वेदी पर व्याख्याओं से सम्पर्क तथा शान्ति निकेतन में वेद कथा करते रहने का प्रभाव है कि यह आत्म चरित्र उपलब्ध हो गया।

सन ५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम में ऋषि ने पूरा भाग लिया

सत्यार्थ प्रकाश की साक्षी—

अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में ऋषिवर लिखते हैं--

"जब संवत् १९१४ में तोपों के मारे मन्दिर की मूर्त्तियाँ अंग्रेजों ने उड़ा दी थीं, तब मूर्ति कहाँ गई थीं। प्रत्युत वाघेर लोगों ने जितनी वीरता दिखाई और लड़े, शत्रुओं को मारा, परन्तु मूर्त्ति मक्खी की एक टांग भी न तोड़ सकी।

जो श्री कृष्ण के सदृश कोई होता तो इनके धुर्रे उड़ा देता, और यह भागते फिरते। भला यह तो कहो जिसका रक्षक मार खाये उसके शरणागत क्यों न पीटे जायें।"

—सत्यार्थ प्रकाश ११ समुल्लास पृ० ४०६ बुकसाइज।

वाघेर जाति—"१८५७ का भारतीय स्वातन्त्र्य समर" में वीर सावरकरने सन् ५७ की इस घटना को स्पष्ट किया है। वाघेर जाति की वीरता—

"स्वातन्त्र्य समर के रुद्र तान्त्या टोपे ने कानपुर की ओर बढ़ना आरम्भ किया। उनके पहुँचने से पहले ही लखनऊ हाथ से निकल गया।

केम्पवेल ने गंगा के किनारे ही तान्त्या टोपे को घेर लिया। बीर-क्रान्तिकारियों की तलवार ब्रिग्रेडियर विलसन को चाट गई, मेजर स्टीलिंग न रहा। लेफटिनैन्ट गिबन्स भी धराशायी हो गया।··· ·····इस प्रकार तान्त्या टोपे को तृतीय विजय प्राप्त हुई। रण देवता ने एक और सुमनाञ्जलि विजय माल के रूप में समर्पित कर दी।

अंग्रेजों की दुर्दशा—इस पराजय का अत्यन्त रोचक वर्णन एक अंग्रेज अधिकारी ने इन शब्दों में किया है—'आपको आज का विवरण पढ़ कर आश्चर्य होगा, क्योंकि आपको विदित होगा कि अपने सम्मान चिन्हों महान् उपाधियों और नितान्त प्रसिद्ध शौर्य से मण्डित गोरे सैनिकों

को पराजय मिली। घृणित एवं तुच्छ भारतीयों ने उनके तम्बू और सामग्री ही नहीं प्रतिष्ठा का भी अपहरण कर लिया और अब हमारे शत्रुओं को हमें पराजित फिरंगी कहने का अधिकार प्राप्त हो गया था। हमारे सैनिक अपने उलट दिये गए तम्बुओं, फटे, जीर्ण, शीर्ण वस्त्रों तथा सामग्री और भागते हुए ऊंटों, हाथियों, अश्वों तथा नौकरों सहित भाग निकले। यह सम्पूर्ण घटना ही नितान्त लज्जाजनक और विषाद पूर्ण है।"

—चार्लस बालकृष्ण की-इन्डियन म्युटिनी, खण्ड २, पृ० १६०

यहाँ बाघेर शब्द नहीं है। पर यह बाघेर कानपुर के आस-पास रहने वाली ही वीर जाति है। इनका नाम किसी इतिहासकार के लेख में नहीं दिया गया। पर ऋषि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश में इन्हें 'बाघेर' जाति के नाम से बड़े समादर के साथ स्मरण करते हैं। इस शब्द प्रयोग से सिद्ध हो रहा है, ऋषि दयानन्द ने इस घटना को प्रत्यक्ष देखा था। इतना ही नहीं अभी पूरा वृत्त पढ़ लीजिये। इसमें कौन सम्मिलित थे। किस मन्दिर की मूर्त्तियाँ अंग्रेजों ने तोपों से उड़ा दी थीं।"

"अंग्रेज इतिहासकार भी इस बात से सहमत हैं, कि यदि तान्त्या टोपे के शौर्य और रण कौशल में उसकी सेना के अनुशासन का योग दान हो जाता तो सम्भवत: तान्त्या टोपे हम को मटियामेट कर देता परन्तु अभी भारत को कुछ और ही देखना था।

बिठूर के मन्दिर को तोपों से उड़ाना—उन्हीं दिनों तान्त्या के शिविर में नाना साहब पेशवा और वीर कुंवर सिंह भी आ मिले। १ और २ दिसम्बर को कैम्पवेल की सेनाओं से लोहा लिया। ६ दिसम्बर को पुन:। पर उन्होंने (अंग्रेजों) ने क्रान्तिकारियों की ३२ तोपों पर अधिकार जमा लिया। क्रान्तिकारी अयोध्या और कालपी की दिशा में पलायन कर गए। केम्पवेल ने अब ब्रह्मावर्त पहुँच कर वहाँ लूट मार की और नाना साहब के बिठूर स्थित महल के महल को खण्डहर सा बना दिया। उसने अपनी विजय के भवन पर कलश चढ़ाने के लिए वहाँ के **सभी मन्दिरों को भी खण्डहर बना दिया।**

ब्रह्मावर्त का वही महल उसने खण्डहर बना दिया, जिसमें भारत माता के महान् सपूतों नाना साहब, तान्त्या टोपे, बाला साहब और राव साहब खेले थे। जिसमें झाँसी की अलबेली लक्ष्मी बाई पली थी और बढ़ी थी।

यह वही राज महल था, जिसके प्रांगण में बैठ कर १८५७ के महान् स्वातन्त्र्य संग्राम को कल्पनायें संजोई गयीं थी। इस साधना को ब्रह्मावर्त के देवालयों ने ही तो आशीर्वाद दिया था। इसी राजमहल में स्वातन्त्र्य सुमन खिले थे। इसी राज महल का तो प्रक्षालण एक दिन अंग्रेजों के उष्ण रक्त से किया गया था।

—पृष्ठ ३६२,३६३।

शिवनारायण द्विवेदी ने 'गदर का इतिहास' लिखा है, पर अंग्रेज ऐतिहासिकों के स्वर में स्वर मिलाना पड़ा है। अंग्रेजी शासन था न! प्रकाशित १९७८।

—"सिपाही गंगा पार होने का प्रबन्ध कर रहे थे। होप ग्रान्ट की सेना ने उन पर हमला किया। १५ तोपें छोड़ कर सिपाही भाग गए। यह लड़ाई ९ दिसम्बर को शिवराज पुर के गांव के सामने हुई थी ... नाना साहब बिठूर आये थे। पार हारका समाचार सुनकर अपने नौकरों और तोपों सहित गंगा पार होकर अवध की ओर चले गए। प्रधान सेनापति की आज्ञा से ११ दिसम्बर को होप ग्रान्ट ने बिठूर जाकर नाना साहब का मन्दिर और महल तोपों से गिरा दिया था। नाना साहब के महल में जो कुंआ था उसमें से तीस लाख रुपया और चान्दी सोने के बरतन ब्रिटिश सैनिकों ने निकाले।" पृ० १२१६

यह थी बिठूर की मूर्त्तियां और महल जिन्हें अंग्रेजों ने तोपों से उड़ा दिया था। आज भी बिठूर के खण्डहर रक्तिम होली और देश भक्ति की गवाही दे रहे हैं। कभी भारतीय राज्य हो पाया तो यहाँ स्वातन्त्र्य संग्राम का स्मृति चिन्ह वीर पुंगवों की स्मृति में भारत वीरों की गाथा गायेगा।

५७ की घटनायें ऋषि ने स्वयं देखी—प्रत्यक्ष द्रष्टा ऋषि का आत्मा इसी पर सत्यार्थ प्रकाश जैसे धर्मग्रन्थ में भी १८५७ के उनवीरों की स्मृति में यह पंक्तियाँ लिखने को विवश हुआ था। अपना भेद खुल जाने का भय भी भारत वीरों को श्रद्धान्जलि अर्पण करने के कारण छोड़ दिया था। धन्य है भारत माता के सपूत दयानन्द योगिराज और उनके भक्त क्रान्ति समर के होतृगण।

क्या आर्य जगत् ही कभी इन बिठूर के खण्डहरों में स्वतन्त्रता संग्राम के दीप जला सकेगा और भारत को विदेशी भोग विलासिता की दासता से मुक्त रख सकेगा।

थियोसोफिस्ट में सन् ५७ का लेखा

अब तनिक इसप्रसंग के साथ थियासोफिस्ट के आत्मचरित्र का मेल मिलाइये, तनिक भी अन्तर नहीं है। इस दृष्टि से आज तक विश्लेषण नहीं किया गया। इसीलिये सन ५७ का ऋषि का सहयोग अन्धकार में रहा। थियासोफिस्ट का अंग्रेजी लेख मिलता न था। महात्मा नारायण स्वामीजी के पुस्तकालय में यहाँ रामगढ़ में अचानक यह हाथ लगा। सारा रहस्य खुल गया। देखिये

थियासोफिस्ट में स्थान	तिथियां
कुम्भमेला हरिद्वार	बैसाख १९१२ = मई १८५५ ईस्वी।
Life of Swami Dayanand Sarasvati —By, Har Bilas Sharda ji	
शीतकाल बिताया कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष माघ In a munntain Peak Shiva puri (Town of Shiva) where I spent the four mounths of the cold seaon अर्थात् शिवपुरी में बीता। पृ० १६	१९१२ माघ फाल्गुण फरवरी १८५७
शिवपुरी से केदार, केदार से गुप्तकाशी फाल्गुण के बिताये। (I stayed there a few Days) पृ० १६	कुछ दिन
वहाँ से त्रियुगीनारायण, गौरी कुण्ड होता हुआ, भीम गुफा, केदार आया। (Went thence to Tiruyugee Narayan, Gowree Kund, Cave of Bhim Gupha, returning in a fewdays to Kedar my favourite place of residence पृ० १० I there finally rested. अन्त में विश्राम वहां किया।	कुछ दिन
Havingwandered in vain for about 20 days. १० p. व्यर्थ घूमाने के बाद	बीस दिन
तुंगनाथ पर चढ़ा, ओखी मठ पहुंचा, गुप्तकाशी आया, पुनः ओखी मठ, बद्रीनारायण	चैत्र १९१३-१८५६ मार्च।

I lived with him a few Days — कुछ दिन

अलकनन्द-माना-से होकर सत्पथ तक की यात्रा — बैशाख १९१३ १९५६ अप्रैल

Set out on my Journey back to Rampur रामपुर after Crossing Hills, forests and having descended the chilka

यात्रा आरम्भ की वापिस रामपुर के लिये, पहाड़ पार किये, जंगल, चिलका घाटी पार की। — बैशाख १९१३= सन (अप्रैल मई) १८५६

(Back) शब्द (वापिस लौटा) शब्द बता रहा है यह रामपुर श्री नगर के पास वाला है। काशीपुर वाला नहीं।

वहाँ से काशी पुर-द्रोण सागर Where I passed the whole winter जहाँ सारा शीत बिताया — कार्तिक, मार्गशीर्ष पौष, माघ संम्वत् १९१३ नवम्बर दिसम्बर= १८५६

Thence again to Sambhal Muradabad वहाँ से फिर दोबारा सम्भल मुरादाबाद से After crossing Gurh, Mukteshvar I found my self again on the banks of Ganges. फिर दोबारा मैंने अपने आप को गंगा के किनारे पाया .. having lingered sometimes on the banks of the Ganga — जनवरी फरवरी १८५७ मार्च अप्रैल १८५७ फाल्गुन चैत्र=१८१४

I was just entering Cawnpur by the southeast of the cantonement the Samvat year of 1912* (1855 A. D. was completed. मैंने कानपुर में प्रवेश किया उस सड़क से जो छावनी के पूर्व से जाती थी सम्बत् १९१२*) अर्थात् (१८५५ सन्) पूर्ण हुआ।

During the following five months, — १८५७ के अप्रैल मई,

* यहाँ १९१२ अशुद्ध है। १९१३ होना चाहिये। १९१३ समाप्त हुआ मार्च १८५७ को।

---

* यही बात पं० घासीराम जी वाले देवेन्द्र बाबू के म० द० चरित्र में पृ० ४७ के फुटनोट में कही है। उस समय १९१२ समाप्त हो चुका था। १९१३ होना चाहिए पृ० ४७

I visited many a place between Cawnpore and Allahabad इन पांच महीनों में कानपुर और अलाहाबाद के बीच में बहुत स्थानों में घूमा।	जून, जुलाई अगस्त= चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण सं० १९१४
In the begining of Bhadrapada I arrived at Mirzapur आरम्भ भाद्रपद में मिर्जा पुर पहुँचा।	सितम्बर १८५७ सन् भाद्रपद १९१४ सं०
I stopped for a month or so near the shrine of vindya chal Asoolgi एक मास के लगभग विन्ध्याचल असूल जी में ठहरा	सन् १८५७ सितम्बर १९१४ भाद्र पद
arriving at Benras in the early part of Ashwin, stoppedthere at shrine of durga Kho in Chandalgarh wher I passed ten days	आश्विन का मध्य= १९१४ अक्तूबर १८५७

यह भ्रान्ति स्वरचित जीवन चरित्र में १९११ में हरिद्वार के कुम्भ में चल पड़ा लिखने से हुई है। कुम्भ १९१२ में था।

चण्डाल गढ में दुर्गा खोह में १० दिन ठहरा 10 days	आश्विन समाप्त
बनारस आश्विन में पहुँचा १२ दिन ठहरा	कार्तिक मध्य नवम्बर

and renewed my travels, after what I sought for

और अपनी यात्रा पुनः आरम्भ की, उस लक्ष्य के लिए जिसकी मैं खोज में था, चावल खाना सर्वथा छोड़ दिया केवल दूध पर रहना आरम्भ किया। दिन रात योग अध्ययन में लगा।

नरवदा के स्रोत की ओर यात्रा जारी की।

इस थियासोफिस्ट उद्धरण और काल गणना से सर्वथा प्रामाणित है कि स्वामी दयानन्द जी १९५७ की क्रान्ति में कानपुर में हैं और पूरा भाग लिया है।

आज तक की भूलें—इस काल गणना को जान पड़ता है किसी ने मनोयोग से नहीं किया। पं० लेखराम जी ने यह तो स्वीकार किया है। कि चैत सुदी १९१४ विक्रमी अर्थात् २६ मार्च १८५७ बहस्पति वार को वहां चण्डाल गढ से आगे चल दिया। चण्डाल गढ का काल असौज शु.दि.

१६१३ बुधवार लिखा है। पर असौज शीतकाल है जो ऋषि ने उनके ही लेखानुसार द्रोण सागर पर बिताया है। स्पष्ट काल गणना में भूल है।

१.श्री पं०लेखराम जी ने मोटेशीर्षक में लिखा है—'उत्तराखण्ड में पौने दो वर्ष तक विद्वानों तथा योगियों को खोजा' म.द.जी.च. पृ. ३१। इस हिसाब से भी १६१२ सं० के वैशाख कुम्भ तदनुसार ११ अप्रैल १८५५ से पौने दो वर्ष ११ जनवरी १८५७ अर्थात् वैक्रम संवत् चैत्र १६१४ तक योगियों की खौज बनती है। इस चैत्र १६१४ के पीछे द्रोण सागर पर जाना चाहिये। द्रोण सागर हिमालय में नहीं, मैदान में ही मुरादाबाद के समीप है। थियासोफिस्ट में शीत काल द्रोण सागर पर विताया है। कहीं भूल न है।

२. १६१४ अर्थात् १८५७ में यदि पण्डित जी के लेखानुसार अमर कण्टक की दूसरी यात्रा है। तो इस काल से पहले अमर कण्टक की पहली यात्रा होनी चाहिए। जिस का उल्लेख इस आत्मचरित्र में ही है।

३. भूल से फिर लिखा गया है—"छावनी के पूर्व जाने वाली सड़क से कानपुर को जाने वाला था। तो संवत् १६१२ विक्रमी तदनुसार ५अप्रैल १८५६ समाप्त हुआ' पृ. ३७।

विचारिये--११ अप्रैल १८५५ से ५ अप्रैल १८५६ तक उत्तरा खण्ड में पौने दो वर्ष रहने के पश्चात् कानपुर द्रोण सागर से गढमुक्तेश्वर तक ५।६ महीने ठहरने के पीछे भी कानपुर में ५ अप्रैल १८५६ में कैसे पहुँच गये। स्पष्ट भूल काल गणना न करने की है।

३. कलगणना की ही नहीं गई। आगे दो पंक्तियों में—एक साथ छपियों तक में भी विरोध है—'भाद्रपद तदनुसार अगस्त मास सन् १८५६ के आरम्भ में रविवार कोमैं...बनारस जा पहुँचा पृ. ३०

असौज (१५ सितम्बर १८५६ सोमवार) के आरम्भ में बनारस पहुँचा।" स्पष्ट है पं० जी को नोटों से पण्डित जी का हार्द नहीं समझा गया। पण्डित जी के लेख में ऐसा विरोध हो नहीं सकता। संग्रह कर्ताओं की भूल है।

महात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी ने भी भूमिका में इस बात को खोल कर स्पष्ट किया है---' बहुत से वृत्तान्त पण्डित जी के हृदय में ही समाप्त हो गए।" —पृ. ४१

४. इसी प्रकार मनः प्रसूत कल्पना अलकनन्दा पार करते हुए याद्रोण सागर पर ऋषि की देहत्यागने की भावना का उल्लेख कर दिया गया है। थियासोफिस्ट में तो देह त्याग की कोई भी बात नहीं। पढ़िये I refused their offer for I could not walk Not with standing their pressing invitation offers. I remained firm and would not take Courage and follow them as they wanted me but after telling them that I would rather die, refused even to listen them, the Idea had struck me that I how better return and prosecute my studies"—मैंने उनकी घर ले जाने की सहानुभूति को लेने से इनकार कर दिया क्योंकि मैं चल नहीं सकता था। मैं उनके आग्रह पूर्ण निमन्त्रण को मान न सका मैं दृढ रहा। उनके पीछे जाने की हिम्मत न कर सका जैसी उनकी इच्छा थी। उनको बता दिया मैं चाहे मर जाऊँ उनको सुनने से भी मना कर दिया। यह विचार आया, कि अच्छा हो में लौट जाऊँ और अध्ययन जारी रखू।

यहाँ देह त्याग की कोई बात नहीं। चाहे मर जाऊँ और बात है। हाँ उपदेश मञ्जरी में दशम व्याख्यान में देहत्याग की बात है। पर वह अलकापुरी की है—' जिस पहाड़ पर पुरानी अलकापुरी है उस पर मैं इस विचार से गया था कि एक वार ही अपना शरीर वर्फ में गलाकर संसार के धन्धों से मुक्त हो जाऊँ। परन्तु वहाँ पहुँच कर विचार में आया कि इस जगह पर मरना तो कोई पुरुषार्थ नहीं अलबत्ता ज्ञान प्राप्त करके परोपकार करना पुरुषार्थ है इस विश्वास के बदलने पर लौट आया था।"

—पूना प्रवचन पृ. ११६

इस घटना को द्रोण सागर पर लिखना भूल ही कही जा सकती है। १६वें व्याख्यान में लिखा है-''हिमालय पर्वत पर पहुँच कर देह त्यागना चाहिये ऐसी ईच्छा हुई ' द्रोण सागर तो हिमालय में है ही नहीं। अलकनन्दा हिमालय में है, पर अलकनन्दा को पार करते हुए यदि देह त्याग की इच्छा हुई होती तो भी हिमालय पर्वत नहीं लिखा जा सकता। हिमालय पर्वत पर तो अलका पुरी है।

५७ **में क्रान्तिकारी दयानन्द का बयः**—१८५७ मे ऋषि दयानन्द की आयु ३३ वर्ष की थी। क्यों कि सन १८२४ में ऋषि का जन्म हुआ था। उस समय वे रुद्र ब्रह्मचारी थे। जिसके विषय में सत्यार्थ प्रकाश में ऋषि ने लिखा है—"**एतेहींद सर्व रोदयन्ति**'—उस रुद्र ब्रह्मचारी के प्राण

इन्द्रियां, अन्तः करण और आत्मा बलयुक्त होकर सब दुष्टों को रुलाने और श्रेष्ठों के पालन करने हारे होते हैं।"—स० प्र० ३ समुल्लास।

देश स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़ा हो। साधु सन्न्यासी सब ही भाग ले रहे हों। दयानन्द कानपुर में हों और वे असंग रहें। असम्भव है सन् ५७ की घटनाओं को तिथिवार मिलान कीजिये। फिर विचारिये— उस भयंकर स्वतन्त्रता संग्राम का आग भड़कने पर, दयानन्द जैसा भारत को जगाने वाला अग्रगण्य नेता, आर्याभिविनय जैसे भक्ति पूर्ण ग्रन्थ में भी अखण्ड साम्राज्य की प्रार्थना करने वाला, सत्यार्थ प्रकाश में विदेशी राज्य का घोर विरोध करने वाला, लाट पादरी और गवर्नर से भी निर्भय हो भारत की आजादी की बात कहने वाला, क्रान्ति से अलग थलग रह सकता था!

स्वातन्त्र्य संग्राम की चिनगारियाँ—Beging of mutiny on january 23, 1857 thc troops of Dum Dum near Calcutta openly displayed Their cartridoes.

On Marah 29 at Barrack Porc the adujtant of the 34th N. I. was cut on the parade ground, by Brahaman Sepoy.

During March and April twenty five fires occured at distant Ambala at Merrut on May 3 th 7th Oudh Infantry mutined at Lucknow.

—The Oxford History of India, by Vlncent A Smith.

५७ सन के विद्रोह का श्री गणेश। २३ जनवरी १८५७ को कलकत्ता के समीप दमदम की सेनाओं ने खुलकर कारतूसों के विरुद्ध विरोध किया।

बैरक पुर में २९ मार्च को ३४ नं. एन. आई० के सैनिक आफीसर सार्जन्ट (ह्यू मन को ब्राह्मण सिपाही (अर्थात् मंगल पाण्डे जिस का नाम घृणा दिखाने को नहीं लिखा गया) पैरेड ग्राउण्ड के खुले मैदान में गोली से उड़ा दिया गया।

मार्च और एप्रिल में नं०२५ के रिसाले ने दूर अम्बाले में गोली दाग दी।

३ मई को मेरठ में, ७ नं. अवध इनफैण्टरी ने लखनऊ में विद्रोह कर दिया।

—विनसैंट स्मिथ की हिस्टरी आफ आक्स फोर्ड

जनवरी, फर्वरी, मार्च, अप्रैल मई में ऋषि भी सम्भल, गढ गंगा के किनारे, मेरठ, अन्त में कानपुर में थे। क्रान्ति समर से अछूते रहे हों यह असम्भव है। समाचार न मिलते हों यह नितान्त असम्भव है।

गुजरात के पंचांग से गणना की जाये तो तिथियां दो मास आगे बढ़ जायेंगी। क्योंकि गुजरात में दिवाली पर कार्तिक-अक्टूबर में ही विक्रम सम्वत समाप्त हो जाता है —(देखो-किशना डायरी, श्री कृष्ण प्रिन्टिंग प्रेस, खारगेट, भावनगर)। इस गणना से मई १८५७ में कानपुर में बीती माननी होगी जून, जुलाई, अगस्त, सितम्बर, ५ मासों में कानपुर के परिसर में रहे। इससे निश्चित रूप से स्वामी जी ने क्रान्ति में पूरा भाग लिया है। 'थ्यासोफिस्ट तीथि और स्थान (देखो पृ० १०६) की गणना से भी सुस्पष्ट है कि क्रान्ति काल के ५ मास में ऋषि कानपुर और इलाहाबाद के मध्य रहते हुए क्रान्ति स्थानों में आते जाते रहे। क्रान्ति का इतिहास पढ़िये—

"६ जून को भयानक तूफान उठा। एक ओर इलाहाबाद और दूसरी ओर कानपुर। दोनों ओर का प्रतिघात फतहपुर पहुँचा। फतहपुर के उत्तेजित हिन्दू मुसलमान सिपाहियों से जा मिले। मुसलमान ईसाइयों के प्रचार से बहुत अधिक नाराज थे। इसलिए उनके विध्वंस के लिए चारों ओर से एकत्र होने लगे। सिपाहियों ने जेलखाना तोड़ दिया। कैदी चारों ओर लूटने खसूटने लगे। खजाना लूटा गया। कचहरी जला दी गई।

पांच सप्ताह तक फतहपुर विपक्षियों के हाथों में रहा। लोगों ने नाना साहब को अपना स्वामी स्वीकार किया।······मजिस्ट्रेट सेहरा ने ने लिखा है हमारे रास्ते के अधिकांश गांव जला दिये। कहीं एक आदमी दिखाई नहीं देता। घरों की जगह राख के ढेर दिखाई देते थे। दिन में मेंढकों और झिल्लियों की आवाजें सुनाई देती थीं। मुर्दों के जलने की बू आती थी।

- पृ. सं. ६६९ गदर का इतिहास

फतहपुर संग्राम का समाचार कानपुर पहुंचा। २२ मील पर अवंग नामक गांव में बाला जी ने भयंकर चोट पहुँचाई, घमासान युद्ध तोपों बन्दूकों से हुआ।

घायल होकर बालाराव कानपुर पहुँचे। अजीमुल्लाखाँ बीबी घर

के अभागे कैदियों की ओर से उदास न था ...... १५ जुलाई को बीबी घर का २१० स्त्री व बच्चों का कत्ले आम हुआ। १६ जुलाई को कटे शरीर पास के कुएं में डाले गये।"

१६ जुलाई को पैदल, सवार और गोलन्दाज, पाँच हजार सेना के साथ नाना साहब अंग्रेजों का मार्ग रोकने चल पड़े।

इत्यादि भारतीय वीरों की वीरगाथाओं से स्वातन्त्र्य संग्राम भरा पड़ा है। यह सब ऋषि के सामने हो और रुद्र ब्रह्मचारी शान्त हो देखता रहे, कैसे हो सकता है।

ऋषि से स्वातन्त्र्य संग्राम के सूत्रधार नाना परिवार का मिलन :

यही सब नाना परिवार के सदस्य थे—नाना की मुंह बोली बहन महारानी लक्ष्मीबाई, नानाजी की माता गंगाबाई, भाई बाला साहब, लेखक फिर मन्त्री अजीमुल्लाखां, तात्याँ टोपे, वीर कुंवर सिंह महाराज श्री के १६१२ से अर्थात् सन् १८५५ कुम्भ मेले पर चण्डी के पहाड़ पर दर्शन कर चुके थे। और संग्राम का आशीर्वाद लेकर आए थे। मंगल पांडे ने भी जो स्वातन्त्र्य संग्राम का श्री गणेश करने वाला था, महाराज श्री के दर्शन और आशीर्वाद लाभ किया था। कानपुर में स्वयं महाराज श्री अपने आशीर्वाद और स्वातन्त्र्य संग्राम के स्वप्रज्वालित विस्फोट को विस्फोट के केन्द्र में पहुँचकर देख रहे थे।

स्वातन्त्र्य संग्राम पर जहाँ ऋषि रहे, सैंकडों पृष्ठ भरे हैं। सबका देना अनपेक्षित होगा। स्वातन्त्र्य संग्राम की आवश्यक तिथियां देते हैं जो महाराज स्वतन्त्रता संग्राम की स्थल भूमि में विचरते आयीं। हो सकता है ऋषिवर ने बहुत कुछ उसमें साक्षात् किया हो।

१० मई को गढ़ जहाँ महाराज ठहरे थे—उसके पास मेरठ में १० मई को अंग्रेजों के विरुद्ध संग्राम की घोषणा हुई।

गदर का इतिहास पृ. १००५

१६ मई को मुरादाबाद के अधिकारियों को समाचार मिला विद्रोही लूट का माल ला रहे हैं। ग. इ. पृ. ६७७

रामपुर मुरादाबाद से १८ मील पर है। नवाब रामपुर की सेना ने अंग्रेजों की सहायता करने से नकार कर दिया। —वहीं

३ जून को बरेली शाहजहाँपुर में उपद्रव हुआ। पृ. १००५

८ जून को नाना साहब का कानपुर में अधिकार, स्वागत, तोपों की सलामी से। पृ. ६५५

३० जून को फरूखाबाद में विस्फोट पृ. १००६

१ जुलाई को धुन्धुपन्थ नाना साहब बिठूर में पेशवा के सम्मानित पद पर आरूढ़ हुए। बिठूर कानपुर से कुल ६ मील है।

१६ जुलाई को बीबी घर का संहार पृ. ६८०

११ दिसम्बर को बिठूर के महलों, मन्दिरों पर अंग्रेजों की तोप गरजीं। १२१६ पृ.

१ जून को—'सांयकाल नाना साहब अपने भाई बाला साहब के तथा मन्त्री अजीमुल्लाखाँ सहित पुण्य तोया गंगा के पावन तट पर जा पहुँचे, अन्य क्रांतिकारी उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। पवित्र गंगाजल अपनी अंजलियों में लिया। और देश की स्वतन्त्रता हेतु धर्म युद्ध में कूद पड़ने का संकल्प ग्रहण किया'।

५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम का इतिहास पृ. १६८

नाना साहब की समाधि मोरवी में—बनी यह घोषित कर रही है कि नाना साहब ऋषि-शिष्य थे। इसीलिए उन्होंने मोरवी में प्रछन्न रूप में वास किया। मधु नदी के किनारे रेलवे लाइन के पास शंकर आश्रम में समाधि बनी है। मोरवी में समाधि बनवाना और वहीं साधुवेश में जीवन यापन इस बात का प्रबल प्रमाण है कि नाना साहब ने ऋषि दयानन्द योगिराज से ही सन्न्यास लिया था। वे उनके शिष्य थे। इसी लिये नाना साहब ने गुरु जन्म भूमि मोरवी में ही अन्तिम समय भक्ति-भाव से यापन किया। और वहीं देह त्यागी। मरते समय वहीं समाधि बनाने को कह गए।

श्री इन्दुलाल जी पटेल 'मोरवी वासी' ने इस समाधि के इतिहास की इन शब्दों में पुष्टि की है—मोरवी आर्य समाज के प्रमुख श्री पाना चन्द देव चन्द अब अति वृद्ध हैं। वे जब छोटे थे, नदी मधु पर स्नान करने जाते थे। आते जाते हुए शीतला मन्दिर के पास ठहरे हुए **नये सन्न्यासी** के दर्शन करते थे। वे प्रसादी शक्कर की देते थे। कुछ काल बाद सन्न्यासी को घर ले आए। ठहराया। सन्न्यासी ने गृहिणी का असाध्य रोग मिटाया। सन्न्यासी ने काच के ऊपर कुछ चित्र,बना रखे थे।

वे १८५७ के वीरों के थे। सन्न्यासी के लिये किया खर्च चोपड़े (बही खाते) में मिलता है।

मरण समय सन्न्यासी बोले—'मैं नाना साहब पेशवा हूं। यह मेरी लकड़ी है। आधी सोने, मोहरों से भरी है। ठाकुर बाबा को देना और अग्नि संस्कार करने को कहना। इत्यादि।

उनकी समाधि शिव मन्दिर के रूप में है। काच का फोटो नगर रोड के घर में मौजूद है। दो तीन टूट गए हैं। वर्तमान रोड का नाम चन्द्र कान्त है। उन (पानाचन्द०) के दादा के समय की बात है। गुजराती साप्ताहिक पत्र 'साधना' रैड क्रास रोड, अहमदाबाद में लेख माला आयी थी। नाना साहब के विषय में थी। नवीन बातें थीं। चित्र अम्बालाल बापा के साथ देखे थे। वाटर कलर हैं।

ह. —'इन्दूलाल' (श्री वासुदेव वर्मा, पटेल नगर के सौजन्य से)

भोपाल में छतरी बनी इसका प्रतिवाद हो चुका है। वीर सावरकर जी ने भी ऐसा ही स्वीकार किया है— 'नेपाल से नाना साहब ने एक पत्र अंग्रेजों को लिखा था— 'What right have you to occupy India and declare me out-law.'— तुम्हारा क्या अधिकार है कि भारत पर अधिकार का मुझे अपराधी घोषित करने का"—इस पत्र के पश्चात् क्या हुआ। इस सम्बन्ध में इतिहास मौन है। —स्वातन्त्र्य संग्राम

श्री शिवशंकर जी मिश्र ने 'नवजीवन' ३१ जुलाई में लिखा—'गुजराती आचार्य जी ने कहना आरम्भ रखा— "मेरे पिताजी पंडिताई करते थे। तथा कथा, पूजा, श्राद्ध, तेरहीं एकादशी में बुलाये जाते थे। एक दिन पिताजी ने मुझसे कहा—आज शिवालय वाले बाबा के मरण-भोज में चलना है। इस वाक्य के साथ पिताजी का गला भर सा आया। लगा उन्हें बाबा की मृत्यु का दुःख था। बोले— 'याद तो है तुम्हें बाबा की! अभी पिछले रविवार को ही तो नदी पर स्नान कर रहे थे।

बाबा के मरने का समाचार सुनकर मैं तो रोने लगा। प्रायः ही दर्शन हो जाते थे। बाबा को नदी पर या पास के विद्यालय में देखता तो दौड़कर उनके पैर छू लेता और वह अपनी झोली से निकालकर कुछ न कुछ प्रसाद मुझे दे देते। पिताजी भी बड़े आदर से झुककर उन्हें प्रणाम करते। कहते—बेटा ये बाबा राजा हैं राजा। अंग्रेजों को देश से निकालने के लिए उनके विरुद्ध लड़े और इसी लड़ाई में उन्हें अपने राजपाट

से हाथ धोना पड़ा । तुम्हें तो मालूम ही है कि नगर सेठ की हवेली में रहते हैं यह बाबा । हां तो मैं उस दिन पिताजी के साथ बाबा के मरण भोज में शामिल हुआ था । सचमुच ऐसा लग रहा था कि किसी राजा का ही मरण भोज है । मौरवी का प्रत्येक व्यक्ति जानता था इस बात को कि यह बाबा और कोई नहीं १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम के नाना साहब पेशवा थे ।

नाना साहब नगर सेठ की हवेली में रहते थे । यह हवेली क्या थी मानो भूल भुलैयां हो । वर्षों तक कोई इसमें रहे और दूसरा कोई जान भी न पाये । हवेली के मालिक उदार, धनी और नाना साहब के अनन्य भक्त थे । वह नाना साहब के आदेश पर दूसरों को रुपया भी दिया करते थे । मौरवी के पास नवलखी नामक एक बन्दरगाह है । मुझे तो सही बातें जानकर ऐसा लगा मानो नवलखी के जरिये नाना साहब विदेशों से संपर्क स्थापित करने की चेष्टा करते रहे । उन्हें इसमें कहां तक सफलता मिली इसके विषय में तो कुछ जान नहीं पाया मैं, पर पिताजी ने एक बार इतना अवश्य बताया था कि नाना साहब के अजीमुल्ला नामके एक साथी ने जूनागढ़ के नवाब के साथ निजाम मुहम्मद नाम रख कर विदेश जाने का प्रयास किया था, किंतु बाद में पकड़ लिया गया था । नाना साहब ने निजाम मोहम्मद को कुछ रुपया भी दिलवाया था ।

नाना साहब मौरवी में थे । उनके नेपाल जाने की बात कैसे उठी और सजग सतर्क अंग्रेजी सरकार ने मोरवी में नाना साहब को गिरफ्तार क्यों नहीं किया ?

"नेपाल जाने वाली बात नाना साहब के सगे साथियों ने ही प्रचारित और प्रसारित की थी, जिससे अंग्रेजी सरकार उन्हें नेपाल के आस पास ही खोजा करे और उसका ध्यान किसी दूसरी ओर न जाए । रही नाना साहब को गिरफ्तार करने की बात मौरवी एक छोटा सा गाँव है । नगर सेठ वहाँ के राजा के समान था । उसके मेहमान सन्यासी के विषय में कौन अंग्रेजी सरकार तक सूचना पहुंचाता । १८५७की क्रान्ति के बाद देश वासियों के हृदय मे अंग्रेजों के प्रति इतनी घृणा भर गई थी कि वह अंग्रेजों के शत्रु के प्रति सहज सम्मान भावना रखते थे । नाना साहब या उस सन्यासी के विरुद्ध कुछ कहने का ग्रामवासियों के पास कुछ कारण नहीं था ।

आचार्य जी शान्त हो गए मानो अतीत के सपनों में खो गए हैं और बन्द नयनों में उन्हें नाना साहब का सन्न्यासी रूप और मोटा सा डंडा दिखलाई दे रहा है।" ऐसा मालूम होता है कि नगर सेठ की हवेली में ठहरने वाली बात मौरवी में पहुंचने के आरम्भिक दिनों की है। और पढ़िये—

'Nana Sahib Peshwa and his chief adviser Azimullahkhan are the two whose ultimate fate remains unknown to this day. It is known that after the failure of the mutiny the Peshwa fled to Nepal. There he was granted assylum by the government of Nepal, but later the British Government exerted pressure fcr his extradition. According to this he was killed by a tigar while leaving Nepal and crossing over to India through the Terai jungles. The British have accepted this eversion of his death and it has been incorporated in official records.

But even British Historians are not quite certain whether Nana Sahib Peshwa did in fact die this way, Malleson a renowned British authority on the Mutiny, remarks that, unfortunately nothing defenite is known as to what happened to Nana Sahib.

In the diary of Lord Montague brings out the fact that he had at one time refused an informer's offer to provide clues leading to the capture of Nana Sashib if he was given a lakh of Rupees.

According to this version, Nana Sashib was forced to quit the heaven of Nepal. He crossed the Terai Hills, spread a rumour that he had been killed by a tiger, and by a devious route reached the city of Morvi with his two associates Yadim shah and Baldev Ram Bhave. He lived in Morvi.......Died recently as 1951.........Peshwa lived under an assumed Name Dayanand Yogindra.

—The Times of India, Sundy, May 25, 1969.

—संक्षिप्त सार—नाना साहब पेशवा और अजीमुल्ला खां का अन्त तिरोहित है। पेशवा नेपाल भागे। आश्रय नहीं मिला। लौटते हुए तराई जंगल में व्याघ्र ने मार दिया। यही अंग्रेजी सरकार के रेकार्ड में है।

परन्तु अंग्रेज ऐतिहासिक इस पर विश्वास नहीं करते। लार्ड मिन्टगुमरी की डायरी में लिखा है कि उसे किसी ने सूचना दी कि यदि एक लाख रूपया दिया जाये तो वह नाना साहब का पता बता सकता है। लार्ड मिन्टगुमरी ने स्वीकार नहीं किया। इसके अनुसार व्याघ्र से मारे जाने की अफवाह स्वयं नाना साहब ने सरकार से छुपने के लिये फैलवाई। यादिम साहब और बलदेव राम भावे के साथ मोरवी पहुंच गये। १६५१ में देहान्त हुआ। अपना नाम दयनान्द योगीन्द्र बताते थे।

आगे अंग्रेजी पत्र ने अजीमुल्ला खाँ की मिली डायरी के आधार और गवाही के आधार पर मध्य प्रदेश के प्रताप गढ़ में मरने की बात कही है।❀

हमें प्रताप गढ़ में मरने पर कम भरोसा है। जो नाना के योगी दयानन्द के सम्बन्ध को उनका कल्पित नाम 'दयानन्द योगीन्द्र' भी बता रहा है।

कुम्भ मेले पर ऋषि के दर्शन करने वाले वीर पुंगव—

नाना साहब—इसी दासता की शृंखला को ८ लाख रुपये में खरीदने वाला कुल अंगार बाजी राव द्वितीय पूना के राजसिंहासन से च्युत होकर भागीरथी के तट पर जाकर ब्रह्मावर्त में अपना अवशिष्ट जीवन व्यतीत कर रहा था। अपनी पेन्शन के धन से अपने और अन्य अनेक परिवारों का उदारता सहित पालन कररहा था। इनमें ही माधवराव का परिवार भी था माधव राव अपने ही सगोत्र हैं यह जान वह नितान्त चकित हुए उन्होंने ७ जून १८२७ ईस्वी को नाना को विधिवत् दत्तक पुत्र के रूप में ग्रहण कर लिया। उस समय नाना की आयु केवल २॥ वर्ष थी।

नाना का जन्म स्थान माथेरान के गगन चुम्बी शिखरों के अंक में स्थित वेणुनाम छोटे ग्राम में हुआ था प्रमुख माधब राव नारायण एवं उन की सुशीलाभार्या गंगाबाई नितान्त सादगी पूर्ण जीवन व्यतीतकर रहे थे। १८२४ ई० में नाना ने जन्म लिया गंगाबाई के पावन गर्भ से।

❀ श्री पं० क्षितीश कुमार जी वेदालंकार के सौजन्य से दोनों समाचार पत्र प्राप्त हुए।

अब नाना साहब २।। वर्ष की आयु में पेशवा और पेशवा के राज-सिंहासन के उत्तराधिकारी हो गए। अंग्रेजों ने आठ लाख रुपया पेंशन देकर राज्य अपने हस्तगत कर लिया।

बाजीराव ने अपनी मृत्यु से पूर्व ही अपना मृत्यु पत्र (वसीयतनामा) लिख दिया। नाना साहब को उतराधिकारी घोषित कर दिया। सम्पूर्ण अधिकार भी उन्हें समर्पित कर दिया। बाजी राव का निधन होते ही अंग्रेज ने घोषणा कर दी कि आठ लाख की पैन्शन पर नाना साहब का कोई अधिकार नहीं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के विरुद्ध नाना साहब ने क्लेम किया। १८५४ में अजीमुल्ला खाँ को राजदूत बना कर लण्डन भेजा। ईस्ट इन्डिया कम्पनी कुछ दिनों तक इधर-उधर के उत्तर देती रही। किन्तु एक दिन स्पष्ट शब्दों में लिख दिया कि 'दत्तक पुत्र नाना साहब को अपने पिता की पेंन्शन प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं।' अजीमुल्ला खाँ लौट आये।

ब्रह्मावर्त में स्थित थी बिठूर नगरी। प्राचीरों से टकराती भागीरथी प्रवाहित हो रही थी। सब ही राजसी वैभव और साज सामान थे। यहां ही नाना साहब रह रहे थे। नाना साहब ही धुन्धु पन्थ नाम से प्रसिद्ध थे—(४६२ पृ० ह. ले.) नाना ही स्वातन्त्र्य संग्राम के चालक थे। अंग्रेजों से डटकर लोहा लिया। सारे देश के हिन्दू-मुसलमानों और साधु-सन्तों को संगठित किया। उनके चरणों में पहुंच कर वीरों ने आशीर्वाद एवं प्रचार में योग दिया।

महारानी लक्ष्मी बाई—उन्हीं दिनों में पावन क्षेत्र काशी में मोरो पन्त तांबे एवं उनकी सुशील पत्नी भागीरथी बाई भी निवास कर रहे थे।

१९नवम्बर १८३५ ई० को इसी दम्पती के घर कन्या ने आँखें खोलीं इसका नाम मनुबाई रखा गया बालिका तीन-चार वर्ष की हो पाई थी जब काशी क्षेत्र का परित्याग कर बाजीराव के उदार आश्रय को ग्रहण करने के हेतु ब्रह्मावर्त जाना पड़ा। मनुबाई ही लक्ष्मीबाई के नाम से प्रसिद्ध हुई। यहां बिठूर में लक्ष्मीबाई और नाना साहब की भेंट हुई। राजपुत्र नाना और लक्ष्मीबाई तलवारों से खेलते थे। जब नाना साहब विद्या अभ्यास करते लक्ष्मीबाई ध्यान पूर्वक देखती और इस प्रकार थोड़ा बहुत लिखने का अभ्यास हो गया। नाना साहब १८ वर्ष के और लक्ष्मी केवल ७ वर्ष की थी। प्रत्येक भ्रातृद्वितीया को दोनों बन्धु भगिनी पर्व का परि-पालन अत्यन्त आत्मीयता से करते थे।

१८४२ ई० में छबीली का विवाह झाँसी के महराजा गंगाधर बाबा साहब के साथ हो गया। लक्ष्मी बाई अब झाँसी की महारानी बन गई। पति की ख्याति के साथ महारानी लक्ष्मीबाई की ख्याति बढ़ने लगी, लोकप्रियता भी।

१८५३ ई० में पतिदेव के परलोकगामी हो जाने पर महारानी ने दामोदर राव को दत्तकपुत्र के रूप में गोद लिया। अंग्रेजों ने महारानी के गोद लेने के अधिकार को ठोकर मार दी और झाँसी को जब्त कर लिया। नाना की बहनछबीली अपने हाथों में राजदण्ड संभालकर दस्युओं को पराजित करने के लिए सन्नद्ध हो गई।

मैं अपनी झाँसी किसी को नहीं सौंपूंगी।

—'डलहौजी एडमिनिस्ट्रेशन' द्वितीय खण्ड।

अजीमुल्ला खाँ—अजीमुल्ला खाँ का जन्म भी एक नितान्त सामान्य परिवार में हुआ था। उन्नति करते-करते वे नाना साहब के विश्वास पात्र मन्त्रियों में से एक हो गये। पहले अंग्रेज परिवार में नौकरी करते हुए उन्होंने इंगलिश एवं फ्रैंच भाषा का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था। ख्याति फैलने पर नाना साहब ने उनको बिठूर दरबार में ले लिया था। नानासाहब को जंच गये। नाना ने बड़ी प्रशंसा की। १८५४में नाना साहब ने उन्हें राजदूत के रूप में इंगलैंड भेजा। अनेक आँगल युवतियों के प्रेम-पत्र उनके प्राणधनअजीमुल्ला के पासआते थे। कोहैवलोक'को'भी इस तथ्य की साक्षी बहुत विलम्ब से मिली। विद्रोह की सब योजनाओं में अजीमुल्लाखाँ का गौरव पूर्ण हाथ रहता था। नाना साहब इनके परामर्श का बहुत आदर करते थे। ऋषि ने स्नेह को देख अजीमुल्लाखां को नाना का बन्धु बताया है।

बाला साहब—नाना साहब के छोटे भाई थे। बाला साहब बड़े भाई नाना साहब का वैसे ही अनुसरण करते जैसे लक्ष्मण भगवान् राम का अनुसरण छाया की तरह करते थे। गंगा में प्रतिज्ञा लेने के समय भी साथ थे। ५७ के अप्रैल मास में नाना साहब के साथ क्रान्तिकारी दलों के एकत्र करने के लिए साथ ही गये थे। १६ जुलाई को कानपुर में विद्रोहियों से पराजित हो जाने पर बालासाहब, तात्याटोपे आदि के साथ महिलाओं सहित कुछ खाद्य सामग्री ले फतहपुर की ओर चल पड़े थे। तोपखाना छीन लेने का शुभ समाचार पा नाना साहब ने श्रीमन्त बाला साहब

को अपना प्रतिनिधि बना कर कालपी भेजा था। इनका युद्ध कौशल और वीरता से मृत्यु के साथ खेल ५७ को भारतीय स्वातन्त्र्य समर में पढ़ने की एकमात्र निधि है।

तात्याटोपे—तात्याटोपे नानासाहब के सामान्य लिपिक थे। कानपुर के हाथ से निकल जाने पर इस कठिन परिस्थिति में असाधारण बुद्धि वाला तात्या ही सिद्ध हुआ। तात्या भी स्वातन्त्र्य समर में कूदे। केम्पबेल लखनऊ को चले। तात्या ने इसे स्वर्ण सन्धि समझा। निर्धन ब्राह्मण लिपिक अब पेशवा की सेना का सेनापति बन चुका था। कानपुर पर आक्रमण की योजना बनाई। बाला साहब की अनुमति भी मिल गई। विंडहम को तात्या ने धर दबाया। घोरतम संग्राम हुआ। नाना साहब और वीरवर कुंवर सिंह भी आ पहुँचे, सारी वीर गाथा स्वातन्त्र्य समर में पढ़ने की है।

वीरवर कुंवरसिंह—जगदीशपुर के शासक थे। अप्रैल से नाना साहब का कुंवरसिंह से पत्र व्यवहार चलरहा था। यह क्षेत्र आरम्भ से ही श्री कुंवरसिंह के वंश घरों से शासित रहा था। अंग्रेजों ने उस पर अत्याचार कर कब्जा कर लिया था। इस समय इनकी आयु ८० वर्ष की थी। युद्ध कौशल और क्षात्र भावना के ओज के कारण जगदीशपुर दूनसे जनरल आयर को भगा दिया। अंग्रेजों ने राजप्रासाद पर कब्जा कर लिया था। मन्दिर की मूर्तियों के साथ भी असहिष्णु व्यवहार किया था। सैन्यशक्ति कुंवर सिंह के पास बहुत थोड़ी थी। बुद्धि कुशाग्र थी, वृक युद्ध का आश्रय लिया। १८ मार्च १८५८ को बीबा क्रान्तिकारी आमिले। अतरौली पर हमला किया। हार हुई। मुकाबले में सेना बहुत थी। शत्रु खुशी मनाने में मस्त हो गये। 'इण्डियनम्युटिनी' में लिखा है—'सच्चेसेनानी को और क्या चाहिए था आस पास के खेतों से गोलियाँ बरसानी आरम्भ कर दीं। कुंवर विजय सिंह को विजयश्री मिली। २२अप्रैल १८५८ को युद्ध करते कराते यह संसार छोड़ा।

मंगल पाण्डे—वीरवर मंगलपाण्डे ने ब्राह्मणकुल में जन्म लिया था। पर वह शौर्य से क्षत्रिय ही थे। साथियों में भी उनकी ख्याति एक शूरवीर सैनिक के रूप में व्याप्त थी। पाण्डे अपने देश स्वातन्त्र्य-भाव को एक मास तक दबाये न बैठ सका। नेताओं की बात उसे जंची नहीं। मैदान में निकल

पड़ा। हाथ में राइफल थामे था। सार्जेन्ट ह्यूमन सामने आया, गोली दगी शव भूमि पर लोट रहा था। लेफटिनेन्ट बाह्व भी आ पहुँचा। गोली छूटी घोड़े सहित धराशायी हो गया। लेफ्टिनेन्ट संभाला ही था। तलवार का वार हुआ वहीं ढेर हो गया। पाण्डे ने अपनी राइफल से अपनी छाती पर गोली दाग ली। घायल सिंह को रुग्णालय पहुँचाया गया। २६ मार्च १८५७ को यह क्रान्ति युद्ध का प्रथम विस्फोट था। ८ अप्रैल को फांसी के फन्दे में उनकी नश्वर काया झूल गई। 'यह नाम भारत भर में सभी विद्रोही सिपाहियों के लिए उपनाम के रूप में ख्याति पा गया।'

--चार्लस-बाल

गंगा बाई—नाना साहब-जैसे भारत सपूत को जन्म देने का पुण्य एवं श्रेय गंगा बाई देवी को है। गंगा बाई सुशीला एवं नितान्त सादगी पूर्ण जीवन बिताने वाली महिला थीं। नाना साहब को माधवराव ने गोद ले लिया। पीछे नानासाहब का महल भारत की समर भूमि ही बन गया था। गंगाबाई भी रणबांकुरी नाना की छबीलीभगिनी लक्ष्मीबाई के साथ ही रहती थी। जब रानी लक्ष्मीबाई ने २०० वीरांगनाओं की वीरवाहिनी संजोई तो गंगाबाई उसमें भी महारानी के साथ कन्धे से कन्धा मिलाये रण में जूझ रही थी।

रानी लक्ष्मीबाई के साथ इनके स्नेह-सम्बन्ध को समझने में इतिहासकार धोखा खाते रहे। वास्तविकता का प्रकाश तो वीरवर सावरकर ५७ ने' का स्वातन्त्र्य समर में किया है। ऋषि ने स्वकथित अज्ञात जीवनी में इन्हें 'सहचरी' नाम से उल्लिखित कराया। सहचरी, माता, भगिनी, दासी, संरक्षिका सभी हो सकती हैं। कोष को देख कर बंगाली में सहचरी का अनुवाद निहायत भद्दा सपत्नी कर दिया गया। धोखा इसलिए भी हुआ कि इतिहास कारों ने भी बिना खोज किये लिख मारा—

The Rani was supported by Ganga Bai another consort of the deceased prince. She showed Courage for superior to that of Tantya tope the Nana's general with him She Coperated.

—The exfod history of India

—By Vincent A. Smith.

विन्सेन्ट ने लिख मारा Consort अर्थात् सम्बन्धित। सर्वथा अस्पष्ट। इसे यह भी नहीं पता कि नाना के जनरल तात्या को सहयोग देने वाली नाना की माता ही थी। क्या इन इतिहासों के आधार पर अज्ञात जीवनी के तथ्य परखे जा सकते हैं?

सन् ५७ में आये चपाती, रक्तकमल का इतिहास

इस आत्मचरित्र में यह प्रसंग बड़े अनूठे ढंग से आया है। यह ऋषि के ही निर्देशानुसार ५७ में काम में लाया गया। नाना साहब आदि नें इसे शिरोधार्य किया था—

आक्सफोर्ड हिस्टरी आफ इंडिया में लिखा है :—

"The general unrest was indicated by the mv sterious Chupatties or griddle Cakes Which began to circulate from village to village about the middle of 1856, been at the root of late rebellion.

Baboo Ram Gopal Ghosh quoted by E.P. P. 612

And the similar circulation of Lotus flowers Which went on the same time but among the regimenents only.

A messanger would come to a village, seeke out the head-man or village elder give him six chuppaties and say-these six Cakes are sent to you, you will make six others and send them to the next village. The head man accepted the six cakes and punctually sent forward ohter six as he had been directed.

No body could say where the transmission of Chupattees began. Some witness appained that it started near Dellhi, Others perhaps with great probability thought the arrangement orginated in Oudh. The process continued for many months.

It was a common accurance for a man to come to a cantone-mentwith a Lotus flower and give it to the chief native officer of a regiment the fiower was circulated from hand to hand in the regiment, each man took it, looked at it and passed it on, saying nothing. When the lotus came to the last man in the regiment, he

disappeared for a time, and took it to the next military station. This strange process occured through nearly all the military stations wnere the regiments of the Bengal native army were cantoned.

G.D.P.P. 35-36

The exact meaning of the symbols used for such cryptic messages was never divined. The Indian government of those days had no organised Secret servic or Intelilgence department, but even if such an institution had esxisted probabily it would have been baffled. All the resources of modern detective agencies were unable to explain the tree-daubing mystery, which accompanied the Cow Killing agitation in the eastern districts of the united provinsce in my own times. I often tried to obtain reasonable explanation with out success.

—वहीं

इस चपाती और कमल का इसी उल्लेख से मिलता जुलता उल्लेख श्री वीर विनायक दामोदर सावरकर ने अपने १८५७ के भारतीय स्वा-तन्त्र्य संग्राम में किया है :—

चपातियाँ—यों तो ये चपातियां गेहूं और बाजरे के आटे से बनाई जाती थीं। इन पर कोई लेख भी लिखा नहीं जाता था, किन्तु जिस के हाथ में पड़ जाती थीं, इनके स्पर्श मात्र से ही उस व्यक्ति के अंग प्रत्यंग में क्रान्ति की चेतना का संचार हो जाता था। प्रत्येक ग्राम के मुख्य अधिकारी के हाथों में चपातियाँ पहुंचती थीं, वह उसमें से कुछ आहार कर बची हुई चपाती को प्रसाद रूप में वितरित कर देता था।

पृ. ७६

राज्यक्रान्ति के इन दूतों की यह सूझ नवीन नहीं थी, क्योंकि हिन्दुस्तान में जब भी क्रान्ति का मंगल कार्य आरम्भ हुआ तब ही क्रान्ति-दूतों चपातियों द्वारा देश के एक छोर से दूसरे छोर तक इस पावन सन्देश को पहुंचाने के लिए इसी प्रकार का अभियान चलाते थे। क्यों कि बेल्लोर विद्रोह के समय भी ऐसी ही चपातियों ने सक्रिय योग दान दिया था।………ये कहाँ से आती थीं और कहाँ चली जाती थीं, यह रहस्य भी किसी को कानों कान विदित न हो पाता था। पृ. ७८

यह विवरण अनेक पृष्ठों में है। वहीं पढें।

रक्तिम कमल—क्रान्ति पक्ष का एक दूत हाथ में रक्तिम कमल लेकर चुपचाप बंगाल में एक सैनिक शिविर में प्रविष्ट हो गया। उसने वह रक्तिम कमल एक कम्पनी के सूबेदार के हाथों में समर्पित कर दिया। इस सूबेदार ने उसे आदर से देखा और अपने सहायक को दे दिया। इसी प्रकार वह रक्त कमल प्रत्येक सिपाही के हाथों में से गुजरा और जिस अन्तिम सिपाही के हाथ में यह कमल पुष्प पहुंचा उसने इसे क्रान्ति दूत के हाथों में पहुंचा दिया। बस सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न हो गया। क्रांति दूत इसी भाँति एक छावनी से निकलता और दूसरे सैनिक शिविर में पहुंच जाता। --वहीं पृ. ७५

यही रक्त कमल और चपातियां हैं जिनके प्रसार का आदेश योगिराज दयानन्द ने नाना साहब, झाँसी वाली रानी तथा अजीमुल्लाखां आदि को दिया है। देहली के पास से चला ऐसा ऐतिहासिकों का अनुमान है या अवध से। देहली में क्रांतिकारी साधुओं का केन्द्र महा योगमाया का मन्दिर-महरौली में था। और अवध में तो नाना साहब आदि का घर ही था। यह भी स्पष्ट है यह प्रथा नयी नहीं प्राचीन है। यही ऋषि ने कहा है। —'अलं बहु गवेषणया'

आत्मचरित्र की ऐतिहासिकता

ऋषि बड़ौदा से बनारस ही गए

बा. देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय ने 'दयानन्द चरित्र' दूसरे एडीशन के पृ. ६३ पर छापा है।

बंगला भाषा में—प्रकाशित सन् १८४६

बंगला—बारोदार चैतन मथ नामक मन्दिरे ब्रह्मानन्द और अपरापर ब्रह्मचारी सन्न्यासीर सहित वेदान्त विषय आलोचना हईल। आमीय ब्रह्म एयि विषये आलोचना हईल। आमीये ब्रह्म एयि विषये ताहारा आमा के उत्तम रूप बुझाइला। पूर्वे वेदान्ताध्ययनेर समये आमि एयि विषये कियदंश बुझिया छीलेन बटे। किन्तु एखोन तहां देर निकट सम्पूर्ण रूपे बुझे ते पारिया शील ब्रह्मेर एकत्व विषये विश्वास करीते लागीलाम।

ए समये एक जन काशीवासिनी स्त्री लोकेर निकट सम्वाद पाइलान ये तथाय्य पण्डित दिगेर एक महा सभा होइले। ए सम्वाद पाइबा मात्र आमी **काशी धामेर मुखे यात्रा** करीलाम। एवं तथाय्य उपस्थित होय्या सच्चिदानन्द परमहंसेर सहित मनस्तत्त्व-विषये आलाप करीते लागिलाम। सच्चिदानन्देर निकटे सुनिलाम ये नरमदा तीरे स्थित चाणोद कल्याणी नामक स्थाने अनेक उन्नत चरित्र सन्न्यासी और ब्रह्मचारी अवस्थिति करिया थाकिन। आमी तदनुसारे उपस्थित होय्या अनेक योग दीक्षित साधु देखिते पालाम। इतः पूर्वे आमी कखोने योग-दीक्षित साधु देखी नाई।

आर्य भाषा :—बड़ौदा में चेतन मठ नामक मन्दिर में ब्रह्मानन्द और दूसरे सन्न्यासियों के साथ वेदान्त विषय पर मेरी आलोचना हुई थी। मैं ही ब्रह्म हूं। इस विषय को इन लोगों ने मुझे अच्छी तरह समझा दिया था। ..... इस समय एक काशी के रहने वाली देवी से मुझे सम्वाद मिला कि वहाँ पण्डितों की एक महासभा होने वाली है।

इस संवाद को पाकर ही मैंने काशी की ओर यात्रा की। वहाँ

(काशी में) उपस्थित होकर सच्चिदानन्द परमहंस के साथ मनस्तत्त्व विषय पर आलापन करने लगा। सच्चिदानन्द जी से सुना कि नर्मदा के किनारे चाणोद कल्याणी स्थान में बहुत उन्नत चरित्र सन्न्यासी और ब्रह्मचारी रहते हैं। तदनुसार मैंने वहाँ उपस्थित होकर बहुत योग दीक्षित साधुओं को देखा। **थियासोफिस्ट** आत्मचरित्र में भी ऐसा ही लिखा है देखो—

I procceded to Baroda. There I setteled for some time and at Chetan math temple I held several discourses with Brahmananda and a number of Brahmcharis and Sanyasis, upon the vedanta poilosphy.It was Brahmanand and other holy men who established to my entire satis faction that I was Brahma the Diety was no other then my self—my ego—

At Baroda learning from a Benaras woman that a meeting composed of the most learned scholars was to be held at a cetan locality, I repared there at once, visiting a personge as known as satchidanand Parmahans with whom I was permitted to discuss various scintific and metaphpysical subjects from him I learnt also, that a number of great Sanyasis and Brahmcharis resided ast Chanod Kalyani. In consiquence of this I repaired to that place of sanctity on the banks of the Narbada, and there at last for the first time withreal dikshits or initiated Yogis and such Sanyasis as chidashram and several other Brahmcharis.'

हिन्दी में भी **थियासोफिस्ट** का अनुवाद ऐसा ही छपा है---

बड़ौदा के चेतन मठ नामक मन्दिर में ब्रह्मानन्द और अन्यान्य सन्न्यासियों के साथ वेदान्त विषय पर विचार हुआ··· ब्रह्म की एकता में विश्वास करने लगा।

इस समय एक काशी की रहने वाली स्त्री से मैंने यह सम्वाद पाया कि वहां पण्डितों की एक महा सभा होगी इस सम्वाद के पाते ही

मैंने काशी की ओर यात्रा आरम्भ की। और वहाँ पहुंचकर सच्चिदानन्द परमहंस से मनस्तत्त्व के विषय में बातचीत करने लगा। सच्चिदानन्द जी से मैंने सुना चाणोद कल्याणी नाम के स्थान में अनेक सन्न्यासी ब्रह्मचारी योगी रहते हैं।" —आत्मकथा पृ. २६

दयानन्द चरित्र दूसरा संस्करण बंगला में और थियासाफिस्ट की आत्मकथा दोनों ही गोविन्दराम हासानन्द की प्रकाशित की हैं।

पं०लेखराम जी ने भी लिखा अमर कण्टकके पीछे तीन वर्ष ऋषि ने नर्मदा पर बिताये। बनारस की रहने वाली देवी का मिलना भी उन्होंने स्वीकार किया है तथा **पं० घासीराम जी ने** भी स्वीकार किया है।

देवेन्द्रबाबू ने लिखा है—बड़ौदा में दयानन्द को एकस्त्री ने पहचान लिया फिर दयानन्द बड़ौदा के परिसर में नहीं रह सकते थे। पं. लेखराम जी ने भी लिखा—'बड़ौदे में बनारस की रहने वाली से मैंने सुना।' बनारस की रहने वाली बनारस की महिमा गायेगी, चाणोद कल्याणी की नहीं। बनारस आज भी विद्या का घर है। चाणोद कल्याणी तो बिल्कुल उजड़ गया है। किसकी महिमा है। विचार लें।

पं. लेखराम जी के नोटों को समझा नहीं गया। पं. जी ने थियासो फिस्ट की आत्मकथा को ही लिखा है। उनकी अपनी कोई खोज इस विषय में नहीं है। आत्मकथा अंग्रेजी में थियासोफिस्ट में लिखा है। बड़ौदा में एक बनारसो बाई से जाना कि 'at a certain locality'— किसी परिसर में सभा है। इसका अनुवाद नर्बदा के तट पर नहीं हो सकता। नर्बदा बड़ौदा की कोई समीपता नहीं है। पचासों मील दूर है। उसे बड़ौदा की लोकेलटी नहीं कहा जा सकता। दूसरा हेतु यह भी है कि 'उस स्थान पर पहुंचकर फिर सुना कि चाणोद कल्याणी में (जो नर्बदा नदी तट पर स्थित है) मण्डली रहती है। इससे भीं स्पष्ट हो रहा है वह लोकल परिसर चाणोद कल्याणी से दूर है। अन्य किसी स्थान पर जाने की बात किसी ने नहीं लिखी। बड़ौदा से काशी गए यही सबने लिखा है। तीसरे यह भी विचारणीय है—पृ० ३८ पर पं. लेखराम जी ने लिखा है '१९१४ को नर्बदा की दूसरी यात्रा थी। अतः सर्वथा सुस्पष्ट है कि पहली बार बड़ौदा से काशी गए, वहाँ से नर्बदा की यात्रा में प्रवृत हुए। यही अन्य थियासोफिस्ट, देवेन्द्र बाबू, उपेन्द्र नाथ मुख्योपाध्याय, पं. घासीराम जी ने बड़ौदा से बनारस जाना स्वीकार किया। अतः यह पक्ष निर्विवाद है। इसीका विस्तृत उल्लेख अज्ञात जीवनी में है।

पं उपेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय—ढाका नार्मल स्कूल के शिक्षक ने भी लिखा है—

"दयानन्द सब स्थान पर भ्रमण करके सब साधुओं से परिचित हो गए थे। उनमें से व्यास आश्रम के योगानन्द, **वाराणासी के सच्चिदानन्द**, केदारघाट के गंगागिरि, ज्वालानन्द पुरी और शिवानन्द गिरि का नाम उल्लेखनीय है। ग्रन्थ, पाठ और योगाभ्यास में समय बिताते थे। तदनन्तर मथुरा में आकर पण्डित विरजानन्द के पास विविध शास्त्र के अध्ययन में रत हुए। पृ. २७४ चरिताभिधान

मुखोपाध्याय ने भी सच्चिदानन्द जी को 'वाराणासी का' लिखा है, चाणोद का नहीं।

ऋषि कैलाश गये थे—वर्तमान जीवनियों में इस आत्मचरित्र की प्रत्यक्षदर्शी व्यक्तियों की साक्षी नहीं मिलती। मिलना बहुत कठिन है। अवधूत साधु के जीवनी की विस्तृत घटनाओं का आँखों देखा हाल मिलना इस आत्मचरित्र में स्वयं कहा तो मिला और पहले प्रकाशित जीवनों में भी संकेत बहुत मिले। संकेत स्पष्ट हैं, उन पर अविश्वास का या अन्यथा कल्पना का कोई अवसर नहीं। अनर्गल शंकायें अयुक्त हैं।

ऋषि कथित पहली जीवनियाँ संक्षिप्त हैं—

ऋषि ने मैडम ब्लैवडस्की और अलकाट को जो **जीवनी थियासोफिस्ट** के लिये भेजी थी वह **अत्यन्त संक्षिप्त** है।

पत्र सं० १८३—कुछ थोड़ा सा जन्मचरित्र लिखकर भेजते हैं।

" १७८—"I shall give you a brief account of me."

पूना का सोलहवाँ व्याख्यान—जीवनी विषयक तो होना ही **संक्षिप्त** था। एक दो घण्टे में क्या क्या बताया जा सकता है। ८०० पृष्ठ की देवेन्द्र बाबू की जीवनी में केवल ५३ पृष्ठ मथुरा तक और १६ पृष्ठ आगरे तक लिखे हैं।

मथुरा आगमन के समय ऋषि की लगभग आयु ३९ वर्ष की थी—३९ वर्ष के केवल ७० पृष्ठ और बीस वर्ष के सात सौ से ऊपर वास्तव में ऋषि के प्रचार काल की जीवनी की खोज की जा सकी। अवधूत स्थिति में की यात्रा का पता भी कोई कैसे लगाता। वह तो श्रीमुख से स्वयं सुना जा सकता था। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि दिग्गज विद्वानों के अध्यवसाय से ऋषिवर ने अपने इस आत्मचरित्र को कलकत्ता में सुनाया था। इस जीवनी की प्रामणिकता के प्रसंग वर्तमान जीवनियों में भी मिल

जाते हैं। उनकी व्याख्या अन्यत्र कहीं नहीं, केवल इसी जीवनी में है। देखिये :

उपलब्ध जीवनियों के उद्धरण

१. महादेव कैलाश के रहने वाले थे कुबेर अलकापुरी के रहनेवाले थे। यह सब इतिहास केदार खण्ड का है(केदार पर्वत श्रेणी का) है। **हम स्वयं भी इन सब ओर घूमे हुए हैं।**

—उपदेश मंजरी दशम व्याख्यान आगे इसे विस्पष्ट किया है।

काश्मीर से लेकर नेपाल तक हिमालय की जो ऊँचीर चोटियाँ हैं। वहाँ देवता अर्थात् विद्वान् पुरुष वास करते हैं। गत समय की तरह प्रायः इस समय बर्फ नहीं पड़ती है।

ऋषि घूमे थे तब ही कह रहे हैं—"वहां विद्वान वास करते हैं और इस समय गत समय की तरह बरफ नहीं पड़ती है।" यह दोनों बातें और किसी यात्री ने नहीं कहीं। केवल दयानन्द कह रहे हैं और इस आधार पर कह रहे है कि कैलाश के परिसर में घूमे थे: ठहरे थे, यथावसर समाधि लगा भूत को देखा था। इस घूमने का व्योरा आप इस आत्मचरित्र में पढ़ेंगे। अन्यत्र कहीं नहीं।

मग्नम् कहाँ है ?

श्री पं० भगवद्दत्त जी—प्रकाशित आत्मचरित्र में तथा **स्वामी सत्यानन्द** जी की खोज पर आधारित उनके लिखित दयानन्द प्रकाश में **पं० लेखराम जी आर्य** मुसाफिर लिखित जीवन चरित्र में भी अलकनन्दा स्रोत से बद्रीनारायण को लौटते हुए ऋषि 'मग्नम्' भी पहुँचे हैं। बद्रीनाथ से अलकनन्दा तक कहीं 'मग्नम्' नहीं आता है। न चारों धामों में कहीं है अतः टिप्पणीकर्ताओं ने इसे 'माना' मान कर संतोष कर लिया है। बात ऐसी नहीं है। माना ग्राम भी लौटते समय दूसरी ओर पड़ता है। अलकनंदा को पार करके वहाँ जाने का मार्ग नहीं है। अतः यह मग्नम् कोई अन्य स्थान ही है।

इस आत्मचरित्र के अनुसार और पूना प्रवचन के अनुसार ऋषि कैलाश गए थे। इस बात को स्वीकार कर हमने मग्नम् का पता लगाया। कैलाश यात्रायें पढ़ीं। उसके मार्गो की पड़ताल की। कैलाश जाने के १२ मार्ग हैं। दो मार्गों में मग्नम् मिला। बद्री नारायण वाले मार्ग को ही हमने ऋषि का मार्ग स्वीकार किया है। देखिये :

Badrinath to Kailesh via Mana pass. 238 Miles

बद्रीनाथ से कैलाश माना मार्ग के रास्ते २३८ मील

स्थान	दूरी मील	ऊँचाई	अन्य विवरण
बद्रीनाथ	०	१०१५६	
१. माना	२		मणिभद्रपुरी ग्राम
२. बलवाणगुफा	३		मूसापानी दो मील, शाक पाडांग डेढ़ मील, ३।४ मील पर अच्छी गुफायें डेरे।
३. घस तोली	६		गुफा डेढ़ मील, बुड' चौन तीन मील, खोरजाक वोट डेढ़ मील डेरे पड़ाव
४. सरस्वती	८		डेरे, घाटा की चढ़ाई आरम्भ, ढाई मील रत्ताकोण, डेरे, आधा मील देवताल
५. मानाघाटा	८२	१८४००	चिरबिटिया, डेढ़ मील भारत सीमा।
६. पोती	६		डेरे, यहाँ तक उतराई
७. जोगोरोव	८	१६४००	डेरे, शीपुका मैदान ३ मील; चरंगला ३ मील
८. रामूराव	१६		डेरे दस मील, ३ मी० उतराई।
९. शंकरा	१०		डेरे
१०. सत्तुखाना	२२		डेरे, कुली ३ मील पर
११. थुलिङ गोम्पा	७	१२२००	(यहाँ तक कुल १०२ मील हुआ) तीन मील खड़ी चढ़ाई यह थुलिङ़ गोम्पा पश्चिमी तिब्बत का सब से बड़ा प्रसिद्ध मठ है। भारतीय पण्डितों ने यहां बैठ कर ग्रंथों का उल्था किया।
१२. मङगनंग	३१		यहाँ डे पुंग विहार की शाखा है मङ्नङ् नदी भी पार करनी होती है।

१३. दापायादाव १४ १४००० जोड़ मठ

१४. नाहब्रा मंडी साढ़े ६ मील

१५. डोङपूगोम्पा १४

१६. दोनगू साढ़े ५ मील

१७. सिबचिलमण्डी १६ मणिथडा साढ़े ७ मील मील + गोम्बा चिन साढ़े तीन मील

१८. गुनियाङ ती नदी साढ़े ४ मील

१९. ज्ञानिमामंडी

२०. छूमिक्शला साढ़े १६ मील

२१. कैलाश (तरछेन) १०३ १५१००

कुल २३८ मील

स्वामी प्रणवानन्द जी ने १५ वार कैलाश यात्रा की १७ वार मान सरोवर गए। १२ मार्गों की तालिका में से यह एक है। मङनंग १३३ मील है। मङनङ से कैलाश १२५ मील है। बद्रीनारायण से २८३ मील पर माना घाटा पार करके १०० मील पर थुलिङ मठ पहुँचते हैं। हतभाग्यता अब तो चीन ने सब घर दबाया है। कौन जायगा।

तरछेन से कैलाश की परिक्रमा आरम्भ हो जाती है पास में ही मानसरोवर और और राक्षस ताल हैं। यहाँ सब स्थानों पर ऋषि घूमे थे। यदि अलकनन्दा के स्रोत वाली गति से चले हों तो ऋषि को यह यात्रा केवल ४ दिन की होती है। यदि अवधूत अवस्था के ४०।४० मील चले हों तो ६ दिन की यात्रा हुई होगी। यह सब यात्रा इसी उत्तरा खंड के पौने दो वर्ष के काल में हुई है। देखो

जी० च० पं० लेखराम जी लिखित पृ० ३१

ऋषि का हिमालय के समस्त पर्वतीय स्थलों में घूमना

"बद्रीनारायण में रावल जी ने कहा—'प्राय: ऐसे योगी लोग इस मन्दिर के देखने के लिए आया करते हैं।"

सुनकर ऋषि ने संकल्प किया—"उस समय मैंने (दयानन्द ने) यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि समस्त देशों और विशेषत: पर्वतीय स्थलों में अवश्य ऐसे पुरुषों का अन्वेषण करूँगा।" —आत्मचरित्र पृ० ३४

थुलिङ् गोम्पा और बद्रीनारायण मन्दिर का भक्ति भाव का सम्बंध न जाने कब से बना चला आता है। यह भी ऋषि को पता लगा होगा। उधर जाने में आकर्षण हुआ होगा। पढ़िये—

'थुलिङ् पश्चिमी तिब्बत का सबसे प्रसिद्ध मठ है। कितने ही अमूल्य और प्राचीन संस्कृत ग्रंथों को तुर्कों ने जलाकर नष्ट कर दिया। नालन्दा विश्वविद्यालय के आचार्य दीपंकर श्री ज्ञान सन् १०४२ में यहां आकर नौ महीने ठहरे थे। कई ग्रन्थों का प्रणयन किया था। कई भारतीय पण्डितों ने यहाँ रहकर पाली ग्रन्थों का अनुवाद तिब्बती भाषा में किया था। हंस के बड़े अण्डे के बराबर जौ का दाना अन्य अपूर्व वस्तुओं में यहां रखा है। लगभग प्रति तीन वर्ष बाद १०० लामा-यहाँ रहनेवाले आते जाते हैं।

शीत काल में बद्रीनारायण के पट बंद होने से पूर्व मन्दिर के लिए कुछ प्रसाद और भेंट भेजी जाती है। रावल भी मन्दिर के कुछ प्रसाद और भेंट थुलिङ मठ के लिए भेजते हैं।

—कैलाश मानसरोवर हिन्दी पृ० ३९३-३९४

हृषीकेश से श्रीनगर—इसआत्मचरित्र में हृषीकेश से श्रीनगर (काशमीर) जाने का उल्लेख है, जो थियासोफिस्ट में नहीं। वहां संक्षिप्त होने से यह प्रसंग ऋषि ने छोड़ दिया। कोई विशेष उल्लेखयोग्य घटना थी नहीं।

जाने में समय ३ सप्ताह का लगा है। क्या यह संकलनकर्ता की मन की उड़ान है ? या कोई मार्ग भी है ? जा भी सकते हैं या नहीं ? यद्यपि ऋषि उदानजयी थे, उनके लिए कोई भी मार्ग दुर्गम नहीं था। फिर भी क्या हिमालय यात्रा के अप्रसिद्ध स्थानों का वर्णन और यात्रा संभव भी है या नहीं ? यह प्रश्न थे जिनके तथ्य रूप समझने का पूरा प्रयत्न किया गया। इस आत्मचरित्र का यात्राक्रम इस प्रकार है—

हृषीकेश से श्रीनगर ३ सप्ताह

श्रीनगर से अमरनाथ। अमरनाथ से श्रीनगर।

श्रीनगर से क्षीरभवानी। क्षीरभवानी से श्रीनगर।

श्रीनगर से गान्धार बल, गान्धार बल से तुलमुल, क्षीर भवानी।

—१५ दिन

सिन्धुनद के किनारे-किनारे ओयाइल्ला आदि से कंगन।

कंगन से माटायन, माटायन से कार्गिल।

कार्गिल से मुलबे चम्बा, बौद्ध खर्बु, नुरुल, लिकिर, गुम्फा, बासगो, नीमु, ले, हिमिसमठ, पितुक, फियांग गुम्पा लेशहर, हिमिस गुम्पा।

ले से हृषीकेश

लिकिर गुम्फा, कार्गिल, शालीमार, शालीमार बाग, श्रीनगर धनुष तीर्थ,अगस्त्य आश्रम,ऊषी मठ, रामपुर, रुद्र प्रयाग हृषीकेश।

हृषीकेश से मानसरोवर

हृषीकेश से देहरादून, यमुनोत्तरी, उत्तरकाशी, गंगोत्तरी, गोमुखो, (१।। योजन पर), गंगोत्तरी, त्रियुगीनारायण १।।योजन पर, अगस्त्य मुनि, गुप्त काशी, केदारनाथ, जोशीमठ, बदरीनाथ। ब्रह्मकुण्ड, वसुधारा, सत्पथ, भागीरथी, अलखनन्दा, स्वर्गारोहणशिविर, अलकापुरी, मानसोद्भेद तीर्थ, मानसरोवर, कैलाश,राक्षस ताल, कैलाश से लासा—लासा से दारजिलिंग किचु नदीपार कर लेता स्थान में ब्रह्मपुत्र के उत्तर तट में, च्याकसामपुल, कायरा घाटी, कामपापरत्सि, न्याकरत्सि, उपसिगांव, गियांत्सी (ची), फारि, चुम्बी, इउक (भारतसीमा में) इउक से दारजिलिंग।

कलकत्ता—नाटोर, शिलीगुडी, वारिक पुर, कलकत्ता, गंगासागर, नवद्वीप, कामरूप, कामाख्या, परशुराम, समस्तीपुर, दरभंगा, वेतिया, नेपाल कलकत्ता, पुरी, नासिक, शृंगेरी, वंगलौर, महीशूर, कांची, त्रिचनापल्ली, मदुरै, रामेश्वर, धनुष्कोटि, कन्याकुमारी, काण्ठयान से तैलमन्नार, कोलम्बो, काण्डी, आदममन्दिर, अनुराधापुर, धनुष्कोटि, कन्याकुमारी, रामेश्वर में नाना आदि का मिलन।

इस यात्रा में थियासोफिस्ट वाले सब स्थान आगये हैं। वह सक्षिप्त है, यह आत्मचरित्र विस्तृत है। हिमालय में ऋषि ने दो वर्ष लगाये। यह सब यात्रा की तथ्यता का निर्णय करना था। यह स्थान भी हैं या नहीं। यात्राक्रम ठीक है या नहीं? क्योंकि उपन्यास हो तो इतना लम्बा यात्रा क्रम ठीक नहीं बैठ सकता। उपन्यास हो तब भी रोचक है। अलख धारी के उपन्यास की तरह। पर मैं इसकी ऐतिहासिकता जांचना चाहता था। कोई हिमालय कैलाश तिब्बत यात्रा का नकशा मिले। इसके लिए देहली में खोज की। कुछ पता नहीं चल रहा था। बाबु कौशल किशोर जी Indian School of international studies इण्डियन स्कूल आफ इन्टर नेशनलस्टडीज में अकाउण्ट आफिसर हैं.उनसे जिकर आया। उन्होंने कहा मैं ऐसे आदमी के पास ले चलता हूं जो हिमालय की चप्पा-चप्पा भूमि को जानता है। बड़ी प्रसन्नता हुई। वह मुझे अपनी संस्था के मूर्धन्य **श्रीराम राहुल जी** के पास समय निर्धारित कर ले गये। पता चला यह गौरीशंकर शिखर के विजयी पर्वतारोही दल के घटक हैं। उन्होंने बड़ी उदारता से डेढ घण्टे तक ऊपर का यात्राक्रम सुना। बहुत सी लाभ-दायक नवीन जानकारी भी दी। सब बहुत ध्यान से सुना। अन्त में कहा सब यात्रा बिलकुल ठीक है। स्थानों का यही क्रम है। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

मैंने पूछा - यह यात्रा कितने दिन में की जा सकती है?

राहुल जी—साधन हों तो एक वर्ष में हो सकती है।

मैं—यह यात्रा तो साधनहीन साधु ने की थी!

राहुल जी—तो दो वर्ष में बड़े आराम से हो सकती है।

वे ऋषि दयानन्द का नाम सुनकर चकित हो गये।

बोले—ऐसा था दयानन्द!

उन्होंने चाय आदि मंगा कर स्वागत किया। चलते समय The 'Himalayan Border Land' १८।०रुपये दाम की अपनी पुस्तक भेंट में

दी । मैं भी अपनी 'पातंजल योग साधना' भेंट में दे प्रसन्न था । साधु की भेंट को बड़े सम्मान से स्वीकार किया पुनः दर्शन देने की बात भी कही ।

अलकनन्दा स्रोत के प्रसंग में हम लिख चुके हैं, एक मास की दुर्गम यात्रा असाधारण योगी ने केवल १२ घण्टे में की थी । उसके लिये यह हिमालय यात्रा यदि साधन सम्पन्न लोगों के लिए एक वर्ष की है तोउसके लिए तो दो मास से भी कम की हो सकती है । विश्राम का समय अलग ।

श्री राहुल जी ने तिब्बती शब्द जो यात्राक्रम में आये थे उनकी व्याख्या की थी :—

चम्बा—बुद्ध का नाम है । पत्थर पर रंगीन चित्र को चम्बा कहते हैं । लिकिर गुम्फा—लुकिल, सांप, नाग किल=कुण्डली=सांप की कुण्डली गुंफा=मठ विहार ।

फियांग गुम्पा—ले से इण्डस नदी से मानसरोवर की ओर ३० मील है ।

नीमु—समीपस्थ, ले नगर के पास ।

बौधखर्बु—खर्बु किला, गुफा, अब शमस खर्बु कहते हैं ।

हिमिस—लामागुफा ।

वासगो—बड़ी मूर्ति ।

माटायन का अर्थ बौन-बौन बुद्ध लोगों से उलटा करते हैं । परिक्रमा बायें हाथ से करते हैं । स्वस्तिक भी जर्मनों की तरह उलटा बनाते हैं ।

सत्पथ—सत्पथ से आगे शीत प्रधान चौखम्बा शिखर है ।

राक्षसताल—खारा पानी होने से कहाता है ।

मानसरोवर—मीठा पानी है । नीचे से पानी मिलता है ।

किचुनदी—हैपी वैली में है । किचु-पानी ।

च्याकसाम—खाल की किशती गोल होती है ।

चकसम—घाट ।

गियांत्सी—ची है । सी बोल लेते हैं ।

श्रीनगर से श्रीनगर का मार्ग— मैंने पूछा, क्या श्रीनगर से श्रीनगर भी कोई मार्ग है ?

राहुल जी बोले—"टौंस नदी के किनारे २ घाटी से ने लांग पास । हर्सिल, वास्पाघाटी, चित्रकूट, सतलुज, कुल्लु, मनाली, रोहतांगपास, लाहुल, चम्बा, त्रिलोकीनाथ, फांगी (पांगी) या चम्बा से श्रीनगर जाते हैं ।

हर्सिल में स्वामी जी गुफा में रहे भी थे। ऋषि का हस्तलेख आज भी वहाँ विद्यमान है। श्री आनन्द स्वामी जी महाराज ने भी देखा था।

यह सब वृत्तान्त सुन कर मैंने सोचा ७० मील १२ घण्टे में हिममार्ग को लाँघने वाले उदानजयी के लिये कुछ भी कठिन नहीं है।

काशमीर यात्रा

इस आत्म चरित्र के अनुसार हृषीकेश से काशमीर गये। ३ सप्ताह लगे। हृषिकेश में इतना ही व्योरा दिया—"Passing certain time' लिखा है। केदार Two month with Gangagiri कौन से नहीं लिखा Autum was setting in पतझड़ में श्रीनगर से चल पड़े। कोई निश्चित मास नहीं दिया। शिवपुरी में शीत के चार मास रहे। पीछे म. द. जी. च. में लिखा है— काशमीर से एक बार निमन्त्रण भी आया था। महाराज नहीं गए। यदि महाराज श्री पहले काशमीर न गए होते तो निमन्त्रण अवश्य स्वीकार कर लेते।

कैलाश यात्रा—

१२ घन्टे में अलकनन्दा के स्रोत देखने के बाद,उस समय संभवतः चैत्र लगा होगा, रामपुर आने के पीछे ४मास कोई यात्रा नहीं की यह संभवतः कैलाश यात्रा काल है। वहाँ से कलकत्ता लौटे हैं। कलकत्ता से सन् ५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम में भाग लिया है, जिसे कलकत्ता में बताना उचित नहीं समझा। एक तो थियासोफिस्ट में इस का उल्लेख आ ही गया था। जिसका विवरण देने में असमर्थ होने के कारण थियासोफिस्ट को आगे वृतान्त नहीं दिया। ऐसा प्रतीत होता है कानपुर पर नाना साहब का आधिपत्य हो जाने पर निश्चिन्त से हों, अमरकन्टक की ओर दूसरी बार चले गए हैं, देखो लेखराम जी संगृहीत जीवन चरित्र। पुनः कानपुर का पतन सुनकर लौटे हैं और विठूर का विध्वंस और बाघेरों का शौर्य अपनी आँखों से देखा है। दक्षिण यात्रा क्रान्ति में सफलता न देख दक्षिण की यात्रा की है। रामेश्वर में क्रान्ति संग्राम के अन्तिम समाचार मिले। संभवतः नेपाल के साथ न देने के पीछे यह मिलन और प्रतीक्षा निश्चित रूप से पूर्व निश्चयानुसार हुई है। सन् १८५८ की २६ जनवरीबहादुर शाह की तकदीर का फैसला अंग्रेजों ने किया। ४० दिन लगे। सपरिवार पैगु में रखने की सजा हुई। १८५८ में महारानी ने प्रधान अपराधियों को

छोड़, शेष अपराधियों के अपराध क्षमा किये। महारानी विक्टोरिया ने घोषणा की —'जिन्होंने हथियार उठाये थे वे अपने घर जाकर शान्ति से अपने काम में लगें, उनके अपराध क्षमा किये जायेंगे। जनवरी से पहले घोषणानुसार जो कार्य में लग जायेंगे उनके अपराध क्षमा। उन पर दया की जायगी।"

—सन् ५७ का इतिहास

सन ५८ की इस घोषणा के उपरान्त जनवरी ५९ तक प्रतीक्षा कर दयानन्द सम्भवतः दक्षिण से गुजरात होते हुए लौटे और १४नवम्बर १८६० को अर्थात् १९१७ संवत् के कार्तिक मास में मथुरा में श्री दण्डी जी के चरणों में पहुँचे।

तिब्बत की यात्रा

जोखम भरी तिब्बत की यात्रा ऋषि ने अवश्य की है। सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है—

प्रश्न—मनुष्य की आदि सृष्टि किस स्थल में हुई?

उत्तर—त्रिविष्टप में अर्थात् जिसको अब तिब्बत कहते हैं। ऋषि प्रत्येक बात का निर्णय साक्षात् देखकर करते थे। सुन सुनाकर नहीं। देख कर निश्चय किये बिना आदि सृष्टि तिब्बत में नहीं लिख सकते। यहाँ कोई युक्ति नहीं दी गई है। अन्यत्र सर्वत्र अकाट्य युक्ति का प्रयोग करते हैं। यहाँ केवल निर्णय मात्र है। यह निर्णय देखकर ही हुआ। इसीलिए इस आत्मचरित्र के अनुसार ऋषि लंका में आदम मन्दिर ADAM PEAK देखने गए। आदम मन्दिर भी मानव का प्रथम उत्पत्ति स्थान है। दोनों ही भारत में थे। फिर ऋषि क्यों देखने नहीं जाते।

इस आत्म चरित्र में तिब्बत की जितनी घटनायें दी हैं, इसी प्रकार की मिलती जुलती अन्य तिब्बत यात्रियों ने भी लिखी हैं। अतः ऋषि का यह तिब्बत का वर्णन आँखों देखा है। साथ ही यह भी ध्यान रखना होगा कि तिब्बत में बहुत उच्च कोटि का योग भी सुनने में आता है। The Lost World पुस्तक में दो चेपटर इसी पर दिये हैं। यहाँ स्थान नहीं कि उनका उल्लेख किया जाये। इतना ही ध्यान दिलाना आवश्यक है। योग के लिए भी ऋषि को तिब्बत जाना पड़ा होगा।

तिब्बत की मिलती घटनाएं—तिब्बत के दण्ड—तिब्बत के जेलखाने बहुत ही भयानक हैं। ··· ······ दोपहर दिन को भी उनके भीतर उजाला नहीं पहुंचता। ऐसे ठण्डे देश में मकान के भीतर धूप का न पहुंचने देना ही एक दारुण दण्ड है।

जिसके हाथ काटने होते हैं, पहले हाथों को खूब कसकर बांध दिया जाता है। इस भाँति २४ घन्टे बन्धे रहने पर वह भाग चेतना रहित हो जाता है या रस्सियों से बान्ध कर वृक्ष में लटका दिया जाता है। पकड़ कर नीचे खींचने से टूट जाती हैं।

—तिब्बत में तीन वर्ष—ले. श्री इकाबाई कावागुची पृ. २७६

सबसे कड़ा दण्ड यहाँ पानी में डुबोकर मारने का है। चमड़े की मशक में बन्द करके पानी में डाल देते हैं। मरने पर पानी में टुकड़े कर फैंक देते हैं। सिर काटकर प्रदर्शन के लिए रखा रहता है।

—वहीं

अन्त्येष्टि में पक्षियों को खिलाने का विधान भी है। यह विधि **'लागापो'** कहलाती है।

कैदियों को एक मुट्ठी अन्न मिलता है।

एक दारुण घटना—'सामने जनता का हृदय सम्राट्, सच्चरित्र पूर्ण विद्वान् लामा का शरीर, धर्माधिकार के वस्त्रों से शून्य जेल के वस्त्रों में विराजमान था। जनता रो रही थी।

लामा ने अपना जाप समाप्त किया। १।२।३. तीसरी बार अंगुली उठाई। संकेत दिया। जनता चिंघाड़ मार कर रोने लगी। जल्लादों को आगे बढ़ने का साहस न हुआ। वे भी रो रहे थे।

लामा ने कहा—'तुम लोग क्या कर रहे हो। मेरा समय आ गया है।'

जल्लादों ने दुःख से लामा की कमर में रस्सी बान्धी। भारी पत्थर बांधा। लामा को जीते जी ब्रह्मपुत्र नदी के पानी में डाल दिया। थोड़ी देर बाद रस्सी खैंच कर जांच की। अभी प्राण पखेरु नहीं उडे थे। फिर पानी में फैंका। पुनः दूसरी वार जांच की। जीते थे लामा। सब चिल्ला उठे लामा को छोड़ देना चाहिये। यही कानून है। लामा ने मना किया। कहना मान जल्लादों ने तीसरी वार फिर पानी में डाल दिया। निकाला। शरीर प्राण हीन था।

यह था धर्मगुरु को प्राणदण्ड। लामा का नाम था 'सेगचेन कोरगी-चेन'। अपराध था भारतीय शरत्चन्द्र दास को पढ़ाना। दास भारत लौट चुका था। पीछे तिब्बत सरकार को दास के गुप्तचर होने का संदेह हो गया था।

—पृ. १५

तिब्बत की कठिन यात्रा

पृ. ५५ पर लिखा है—"मानसरोवर तक मुझे (चीन यात्री कावा-गुची को) सीधा उत्तर की ओर जाना था। सूर्य ताप बहुत कम पहुंच रहा था। कहीं-कहीं पर मेरा पैर १४।१५ इञ्च तक बरफ की चट्टानों में धंस जाता था।

खेमे मिले, मैंने कहा—"मैं लासा से आ रहा हूं। कैलाश जाऊंगा। विश्राम करना चाहता हूं। स्थान मिल गया। ऐसा दयालु कभी कोई तिब्बत में मिलता है। वहां से 'गोलांग रिंग पाँच' की गुफा पर पहुंचा। १०० मील के आस पास के लोग इनके भक्त थे। सोने से पहले तीन बार यह लोग गुफा को नमस्कार करते थे। परिचय के बाद ठहरा। विदा के समय उन्होंने पूछा—तुम ऐसे जंगलों में फिरने योग्य नहीं हो। यहाँ क्यों आये ?"

७ जुलाई को विदा मांगी। उन्होंने रोटी मक्खन आदि प्रायः बीस पौंड का सामान मुझ को दिया। और कहा यदि तुम्हारे पास खाद्य सामग्री यथेष्ट न होगी तो तुम अवश्य ही मर जाओगे। ८५ पौंड बोझ अपनी पीठ पर लादकर यहां से विदा हुआ। पृ. ६१-६३

कैलाश की राह के विषय में पूछा। बोले—"गुफा से चलकर दो तीन दिन में एक जंगली जाति के लोगों में पहुंचोगे। वहां से आगे १५।१६ दिन तक निर्जन राह से जाना होगा। इस यात्रा में सहायक मिलना असम्भव है। सम्भव है बसती में पहुंचने पर लूट लिए जाओ।

पृष्ठ ६०

'मेरी तिब्बत यात्रा' नामक अपनी यात्रा पुस्तक में यहां पण्डित राहुल सांस्कृत्यायन ने कहा है—"मोट (तिब्बत) में वैसे भी मनुष्य का प्राण बहुत मूल्य नहीं रखता ...... जहाँ पर लोग मृत्यु से खेलते हैं।'

पृ. ३५

इनाम इकराम देने पर भी यदि तिब्बत में भलामानुस मिल जाये तो उसका शुक्रगुजार होना चाहिये। पृ. ३६

यह यात्रा १७६७ की है। ऋषि की यात्रा १८५५ सन् की है। अर्थात् ५८ वर्ष पीछे की। ऋषि विहंगम अवधूत यात्री थे। खाने को भी कुछ साथ न था। किस योग बल से यात्रा की होगी, योग की बात है। इसीलिए कहते हैं ऋषि की लीला विचित्र है।

हजरत ईसा का भारत में योगाभ्यास

अब से ७२ वर्ष पूर्व लाला जयचन्द्र जी मन्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब ने जालन्धर शहर से १८९९ सन् में मि. निकोस नोट विच रूसी पर्यटक के, राजधानी लद्दाख के लेह स्थित बौद्ध मठ से जानकारी प्राप्तकर ह. ईसा के भारत में योगाभ्यास और अध्ययन के वृतान्त फ्रांसीसी और अंग्रेजी का अनुवाद उर्दू में प्रकाशित किया था। यह प्रकाशन १८९४सन् के आरम्भ की बात है। इससे ईसाई जगत् में बड़ी भारी हलचल मची। ईसाईयों ने इन हालात को झूठा बताया बनावटी तक कहा। निकोस नोट विच को धोखा देने वाला बताया। अन्य बहुत सी चालें चलीं। एक मेम महोदया ने तो लिख मारा कि नोट विच लद्दाख गए ही नहीं। किसी ने लद्दाख में उनको नहीं देखा, न किसी ने उनका नाम सुना। लद्दाख के यूरिपियन मिशन के मिशनरी मि. शा ने लिखा कि नोट विच ने कभी तिब्बत में पैर भी नहीं रखा। मेक्स मूलर ने इस सब इतिहास को अविश्वसनीय लिखा। डा. हेल साहब ने अमरीका के रिव्यु समाचार पत्र में इसके विरोध में लिखा।

ईसाईयों के इस खण्डन का हमारी तरह मिस्टर वीरचन्द, जी आर गाँधी, विश्व की रिलिजियस पार्लियामेंट के भागीदार ने १८९४ में अंग्रेजी में खण्डन छापा सब ही आरोपों का प्रबल खंडन किया। १८९५ सन् में नोट विच ने अपनी पुस्तक का अंग्रेजी संस्करण छपवाया और सारे ही पूर्व पक्ष का प्रबल मुंह तोड़ उत्तर दिया।

यह उर्दु की पुस्तक— 'युसुह मसीह की नामालूम जिन्दगी के हालात' मुझे बा. विश्वम्भर दयाल जी, मन्त्री आर्य तर्क शालिनी सभा दिल्ली ने प्रदान की। इसमें ६६ पृष्ठ हैं। सारी तो दी ही नहीं जा सकती। संक्षिप्त देना भी स्थानाभाव से अनुपयुक्त ही होगा। कोई सज्जन दान भेजेंगे तो छपा दिया जाएगा। यहाँ तो इतना ही विचार है कभी ईसा की इन घटनाओं पर पंजाब आ० प्र० सभा के मन्त्री ने प्रसन्नता ही प्रकट नहीं की अपितु पुस्तक को उर्दु में छापा। और आज का प्रतिनिधि सभा का मन्त्री उन्हें झूठा बता रहा है।

भगवान् से प्रार्थना है कि वह उन्हें सुमति प्रदान करें।

०:—.०

सहयोगियों का आशीर्वाद

प्रभु की प्रेरणा से ही योगाभ्यास को बीच में छोड़कर इस पुस्तक के संग्रथन में संलग्न हुआ। मैंने इसे प्रभु का आदेश जानकर पालन किया अब प्रभु से यही अभ्यर्थना है कि किसी गुफा में प्रवेश करा योग की अग्रिम साधना को सफल बनावे।

वैदिक साधना आश्रम, रोहतक, आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर के भेंट कर्त्ता ऋषि भक्तजनों तथा अनुशीलन में साथ देने वाले आर्य बान प्रस्थों को आशीर्वाद।

इस आत्म चरित्र अज्ञात जीवनी को आद्योपान्त हाथ से लिखकर रखनेवाले और अप्रकाशित लेखों की भी प्रतियां देनेवाले तथा लालाचतुर-सेन जी गुप्त सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि श्री प्रेमचन्द जी शास्त्री संशोधक शास्त्रीं संशोधक, जिनके अनर्थक परिश्रम से यह वृहत ग्रंथ इस सुन्दर रूप में निकल सका। सदा सहयोग प्रदान करने वाले दिल्ली के सर्वोत्तम कलाकार श्री आशाराम जी शुक्ल ने समयाभाव में भी सब दो रंगे चित्र ऋषि दयानन्द की अपूर्व छटा के साथ निर्मित किये। योगाभ्यासी फोट-ग्राफर श्री अर्जुनदेव जी गौगिया, कलकत्ता निवासी ने ये सब फोटो भेंट स्वरूप प्रदान किए। योग साधना संघ-कलकत्ता के योग साधकों तथा अन्य सभी प्रकार के सहयोगी व्यय करने वाले भेंट देने वाले योग प्रेमियो को हृदय से आर्शीवाद देता हूं। भगवान् योग में उनकी रुचि को दिन-प्रतिदिन वृद्धि दें।

कामाख्या मन्दिर के निर्माण में ७०० ब्राह्मणों की बलि

महर्षि दयानन्द ने अपने आत्मचरित्र में दर्शाया है कि कामाख्या मन्दिर के विभिन्न समयों पर हुए निर्माण एवं पुनर्निर्माण के अवसरों पर क्रमशः १५१ ब्राह्मण बालकों,१४० मनुष्यों एवं८०० ब्राह्मणों की बलिदी गई थी पृ० २३०इतिहास के ज्ञान व स्वाध्याय से शून्य एक प्रान्तीय सभा के विद्वान् महामन्त्री ने भद्दी भाषा में इस ऐतिहासिक तथ्य का खण्डन ही कर डाला। विस्तार में न जाकर यहाँ संक्षेपतः इतिहास के कुछ प्रमाण प्रस्तुत किये जा रहे हैं :—

❀'सती के नाम से प्रतिष्ठापित कामाख्या मन्दिर ब्रह्मपुत्र नदी से घिरी हुई सुन्दर नीलाचल पहाड़ी पर कामरूप जिले में गौहाटी से दो मील पश्चिम में २६° १०' उत्तरी रेखांश व ६१° ४५, पूर्वी अक्षांश में अवस्थित है। परम्पराओं के अनुसार मूलतः मन्दिर का निर्माण महाभारत के समय में प्रतिष्ठित एक राजकुमार नरक द्वारा हुआ था और उसने पाषाण खचित मार्ग जल से पहाड़ी के ऊपर तक बनवाया था जिसका अस्तित्व अब भी है। नर-नारायण द्वारा इसका पुनर्निर्माण लगभग १५६५ में हुआ जिस अवसर पर देवी को १४० नरमुन्डों की भेंट चढाई गई। किन्तु नर-नारायण के मन्दिर का थोड़ा भाग ही अब शेष है।"

—'इम्पीरियल गजैटीयर ऑव इन्डिया' ईस्टर्न बंगाल एण्ड आसाम पृष्ठ५४६।

❀'Kamakhya—A temple sacred to Sati, which stands on the beautiful Nilachal hill overhaging the Brahmaputra, about two miles west of Gauhati in Kamraup District, Eastern Bangal and Assam in 26°, 10, N. and 9 10, 45 E. According to traditions the temple was originally built by Narak, a prince who is said to have flourished at the time of Mahabharata, anb to have Constructed a stone-paved causeway up the hill, which is still in existince. It was rebuilt by Nar Narayana about 1965, and on tne occasion of its consecration 140 human heads were offered to the goddess, but only a small portion of Nar-Narayam's temple now remains."

—Imperial gazettere of India, Eastern Bengal, Assam, p.546

—❀सर एवडर्ड ने निष्कर्ष निकाला है कि उस अवसर पर १४० ममुष्यों को नरबलि के रूप में भेंट चढ़ाया गया।······सर एडवर्ड गेट ने हयग्रीव के लिये सात सौ मनुष्यों की बलि का भी उल्लेख किया है।

—हिस्ट्री ऑफ कूच बिहार पृ० १५८ १५९।

❀ Sir Edward has concluded that on this occasion 140 men were offered as human sacrifices......Sir Edward Gait has also referred to seven hundred human sacrifices to Hayagriva."

— History of Cooch Bihar, p. 158, 159.

इस प्रमाण संग्रह के लिए हम श्री भगवत् दुवे दफ्तरी पुराततत्त्व पुस्तकालय नेशनल म्यूजियम का हार्दिक आभार मानते हैं। स्वाध्याय के क्षेत्र में ऐसा गहन ज्ञान अच्छे अच्छे पुस्तकालय निर्देशकों व विद्वानों में भी नहीं मिलता खोज के अनेक प्रसंगों पर इनसे अपूर्व जानकारी मिली है। ऐसे सन्तोषी जीव की पदोन्नति करें, ऐसा अधिकारियों से अनुरोध है।

योगी के आत्मचरित्र का अनुशीलन

आचार्य श्री पं० दीनबन्धु वेदशास्त्री बी.ए., भू० पू० मन्त्री बंगाल विहार आर्य प्रतिनिधि सभा के ४० वर्षीय अथक परिश्रम से संग्रहीत ऋषि दयानन्द की अज्ञात जोवनी के तथ्यों की जांच करने के लिए मैं मार्च १९७० में व्यासाश्रम की खोज में चल दिया। जो चाणोद कर्णाली के परिसर में है इतना तो जीवन-चरित्रों के अध्ययन से मुझे ज्ञात था। चाणोद कर्णाली कहां है। किस मार्ग से कैसे जाऊँ? यह जानना अभीष्ट था।

सार्वदेशिक को टेलीफोन किया, क्योंकि सार्वदेशिक में ही यह आत्म चरित्र अज्ञात जीवनी' के नाम से प्रकाशित हो रहा था। वहाँ से कुछ भी पता न चला। उन्होंने लाजपत नगर में किसी स्नातक महानुभाव का पता दिया। उनके पास प्रोफेसर वेदव्रत महोदय को भेजा, कुछ पता न चला।

पातंजल योग की साधना—ऋषि दयानन्द के नाम से अज्ञात जीवनी में सारगर्भित ढंग से अत्यन्त सरल आर्य भाषा में आई थी प्रामाणिक योग दर्शन की संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दू, उर्दू, गुजराती आदि अनेक भाषाओं की विद्वानों में प्रसिद्ध पचासों टीकाएँ मैंने पढ़ी थीं। पर व्यास भाष्य भोज-वृत्ति, वाचस्पति मिश्र का विवरण, विज्ञान भिक्षु का भाष्य और योग वार्तिक आदि सभी टीकाएँ पढ़ने पर योग और योग साधना के सम्बन्ध में मेरी पचासों शंकाएँ निवृत्त नहीं हुई थीं। उनके समाधान ढूँडने के लिए पचासों दूसरी सभी मत मतान्तरों की योग पद्धतियों का अध्ययन किया था।]इनकी तालिका के लिए सरल हिन्दी भाषा में लिखे मेरे छोटे से हिन्दी योगदर्शन की शुद्ध बोध वृत्ति के अध्यात्मीयम् में पृष्ठ ३ से ७ तक देखें।]

शंकाएँ वैसी की वैसी बनी रहीं, पर जब-जब सार्वदेशिक में प्रकाशित इस आत्मचरित्र को पढ़ा तो मेरी शंकाएँ निर्मूल होती गईं, परन्तु इस आत्मचरित्र का ऐतिहासिक और भौगोलिक स्वरूप शंकाओं से भरा पड़ा

था। योग दर्शन की इसमें सारगर्भित व्याख्या होने के कारण यह अवि-श्वसनीय नहीं जंचता था, क्योंकि विद्यमान आर्य जगत् और पौराणिक जगत का कोई भी विद्वान् से विद्वान् योगाभ्यासी मेरा समाधान न कर सका था।

योग की खोज में— ही मैंने बीसियों वर्ष गंवा दिये थे। पांच गुरु भी बना चुका था। योग न मिलने पर उनसे निवेदन कर दिया था, कि मैं सदा आपको गुरु मानता रहूंगा पर आप मुझे शिष्य रूपेण घोषित न करें, क्योंकि मेरा समाधान नहीं हुआ है। घोषणा पर मेरा प्रतिवाद करना सत्य की रक्षा के लिये और अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिये अनिवार्य हो जायेगा। इस प्रकार के भी अनेक प्रसंग आये कि मुझे उन गुरुओं की संगत में ही उनके समक्ष उनके सिद्धान्तों का आत्मरक्षार्थ प्रतिवाद करना पड़ा। यद्यपि वे मुझे अपने २ मठों का उत्तराधिकार सौंपना चाहते थे। जिसको मैंने आदर प्रदर्शित करते हुए भी स्वीकार न किया। मुझे योग साधना का मार्ग इस 'योगी का आत्म चरित्र' [अज्ञात-जीवनी] स ही मिला था, इसलिये इसकी ऐतिहासिकता और भौगो-लिकता को जांचना बहुत आवश्यक था।

इस विषय में अब तक छपे ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र मौन सा धारण किये थे। क्या उनके मौन से इसे अप्रामाणिक मान लिया जाय या उनके साथ इसका किसी प्रकार समन्वय हो सकता है। इस विचार को लेकर मैंने ऋषि दयानन्द के दसियों जीवन चरित्र पुनः पढ़े, जिनके उद्धरणों द्वारा इस आत्म चरित्र की परिपुष्टि और उनके पुनरध्ययन से प्राप्त ऋषि जीवन सम्बन्धी नवालोक से उपलब्ध समन्वय आगे इस प्राक् परिपोषण में पढ़ेंगे।

इस पुनर अध्ययन में देवेन्द्र बाबू के लिखित 'महर्षि दयानन्द के जीवन चरित्र, में पंडित घासीराम जी की दी हुई टिप्पणी में चाणोद, कर्णाली का पता चला। बड़ौदा से चाणोद कर्णाली को छोटी लाइन जाती है।

मार्च १९७० में मैं अपने पुराने गुरुकुल महाविद्यालय के सहपाठी श्री रामचन्द्र वैद्यराज, गाँव पोस्ट परब, जिला सूरत निवासी। के पास पहुँच गया। वैद्य जी और उनके मित्र मोती भाई पटेल, मोर थाना निवासी के द्वारा व्यासाश्रम [चाणोद, कर्णाली] के ट्रस्टी सूरत निवासी देसाई श्री खण्डू भाई कुंवर जी से परिचय पत्र ले गुजरात की यात्रा

करने के बाद मोटरों और रेल की यात्रा द्वारा नर्बदा नदी को नाव से पार करके ३ मार्च को चाणोद पहुँच गये। श्री वेणी भाई नवनिर्वाचित मन्त्री, बम्बई, बड़ौदा आर्य प्रतिनिधि सभा के परिचय पत्र के साथ आश्रम के स्वामी श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य के पास जा ठहरे। उन्होंने हमें वह सब स्थान दिखाये जहां २ चाणोद कर्णाली में ऋषि दयानन्द ने सन्न्यासी होने के साथ वास भी किया था। कुबेर भंडारी भी देखा जिसमें स्वामी जी भोजन लेते थे। वह छोटी सी कुटिया भी देखी जिसमें स्वामी जी साधना करते थे। उसके अन्दर एक गुफा भी है जिसमें स्वामी जी अभ्यासार्थ बैठते थे। नर्बदा के किनारे हंसारूढ़ आश्रम के पास गुफा और कुटिया भी देखी जहाँ स्वामी जी नर्बदा के किनारे आते थे। आज कल वह आश्रम बहुत सुन्दर बना हुआ है जहाँ भोजन व्यवस्था हो सकती है। अग्नि तीर्थ स्थान में ब्रह्मचारियों के रहने की जगह थी। आरम्भ में ऋषिवर उसी में रहे थे। आजकल तो ये सब स्थान उजाड़ पड़े हैं। रिट कमिश्नर के अधिकार में हैं। चाणोद कर्णाली में कुछ समय बहुत से मन्दिर और उनमें संस्कृत-पाठशालाएं थीं। शतशः सन्न्यासी और ब्रह्मचारी पढ़ते थे। उन दिनों यह स्थान दक्षिण की काशी माना जाता था। आज तो सब कुछ समाप्त हो गया है। नर्बदा की बाढ़ से बचे हुए मन्दिर धर्मशालाएं नये और पुराने आज भी तीर्थ यात्रियों के लिये विद्यमान हैं। तीर्थों में आज भी यह प्रसिद्ध तीर्थ है।

दूसरे दिन ४ मार्च को नर्बदा की धारा पर नीचे की ओर नौका से ५ मील की यात्रा कर व्यासाश्रम पहुँचे। ५ मार्च को शिवरात्रि थी। वहां पर व्यासेश्वर और व्यास जी के गुरु श्री सिद्धेश्वर सुरेश्वर महादेव, नर्बदा माता और लक्ष्मी नारायण के मन्दिर हैं। व्यासेश्वर में व्यास जी की पादुकाएं और शुकेश्वर में शुकदेव जी की पादुकाएं हैं। राधाकृष्ण की मूर्ति काले पत्थर की है। शुकेश्वर मन्दिर एक लाख की लागत से पुराने समय में बना था। उस पर चढ़ने के लिये १५० के लगभग सीढ़ियाँ होंगी यह मन्दिर नर्बदा के दूसरे किनारे पर है। नौका से जाते हैं। व्यासाश्रम नर्बदा की दो धाराओं के बीच में टापू के रूप में है। गर्मियों में एक धारा सूख जाती है। यहां पर गुरु दत्तात्रेय का भी मन्दिर है। १५० वर्ष पहले कैलाश मन्दिर वासी ऋषि दयानन्द के दादागुरु योगेश्वरानन्द जी ने कैलाश मन्दिर का छः फुट के लगभग मोटा कोट (चार दिवारी) बनवाया था, जो चार वर्ष पहले नर्बदा की भयंकर बाढ़ में बह गया था।

दयानन्द के गुरु श्री योगानन्द जी उनके ही शिष्य थे। उन गुरुवर की पुण्य-तिथि भाद्रपदी षष्टी शुक्ला को होती है। वह इच्छा मृत्यु से देह त्यागने के लिये भाद्रपदी पंचमी शुक्ला को सिंह द्वार की गुफा में आसन लगा समाधि में बैठ गये थे। सबको सूचित कर दिया था। अब से ३२ वर्ष पूर्व महाराज जी की अस्थियाँ नर्बदा में प्रवाहित कर दी गईं। श्री महाराज योगानन्द जी ने ७५ वर्ष की आयु प्राप्त की। महाराज के भानजे पं० देवदत्त जी दवे ग्राम पोस्ट डाकोर में रहते हैं। ७६वर्ष की आयु है। वे बड़ौदा में भागवत सप्ताह में गये हुए थे दर्शन न हो सके।

व्यास मन्दिर का मुख पहले बरकाल ग्राम की ओर था। पीछे पलटा गया। यह सूचना व्यास क्षेत्र, बरकाल पो० चाणोद, बड़ौदा स्टेट वासी ज्योतिर्विद निर्भय राम कुबेर जीने सुनाई। इनकी आयु ७१ वर्ष थी।

इस आत्म चरित्र की खोज के लिये श्री पूज्य आनन्द स्वामी जी महाराज ने १००) रुपया देते हुए कलकत्ता जाने की प्रेरणा की। आर्य वान प्रस्थ आश्रम ज्वालापुर से कलकत्ता आर्य समाज से पत्र व्यवहार किया। एक मास प्रतीक्षा की। उत्तर न मिलने पर श्री नारायण स्वामी आश्रम नैनीताल लौट गया। बहुत दिनों पीछे कलकत्ता से स्वीकृति मिली, और मैं २५ मई १६७१ को कलकत्ता पहुँच गया। ३० जून तक ठहरा। आर्य समाज कलकत्ता ने पूरा सहयोग दिया। अपने नियम के विरुद्ध ५ दिन अधिक ठहरने की स्वीकृति भी प्रदान की। पं० दीनबन्धु जी शास्त्री नित्यप्रति आकर बंगला हस्त लेखों और प्रकाशित हिन्दी अनुवाद से मिलान करवाते रहे। वर्षा अत्यधिक हो जाने के कारण, और बीच में आखों के रोग के कारण भी बीच २ में न आ सके। इसलिये कुछ कार्य अधूरा भी रह गया। दीन बन्धु जी का पुस्तकालय बहुत विशाल है, बहुत ही स्वाध्याय शील, सरल प्रकृति देवता स्वरूप विद्वान् हैं। यह सब उन्होंने ऋषि भक्ति से प्रेरित होकर ही किया है। ४० वर्ष जवानी के "दयानन्द का पगला" बन कर और कहला कर भी जीवनी की खोज की है। तीनों ब्राह्म समाजों में जाकर आचार्य पद स्वीकार कर वेद कथा कर अपना प्रभाव उत्पन्न किया। और बीसियों घरों से जीवन के पन्ने एकत्र किये। बहुत से तथ्य मुझे भी बताए और दिखाये। बहुत सी पोषक सामग्री भी प्रदान की। तीन वर्ष तक सार्वदेशिक सभा के प्रतिनिधि भी रहे। कलकत्ते का प्रत्येक आर्य

মহর্ষি দয়ানন্দ সরস্বতী

মহর্ষি দয়ানন্দ যে বিরাট ও সর্বতোমুখী প্রতিভা লইয়া
জন্ম গ্রহণ করিয়াছিলেন তাঁহার উজ্জ্বল জীবনী তাহারই
প্রকাশ মাত্র। তিনি শুধু সমাজ সংস্কারক ও বৈদিক পণ্ডিত
ছিলেন না। তিনি ছিলেন জীবন ভর বিপ্লবী, সংস্কারক,
দেশ ও ধর্মসেবক, রাজনীতিজ্ঞ ও দেশভক্ত, সাধক, ও পরম
যোগী ও জীবন্মুক্ত পুরুষ। পৃথিবীতে এমন কোনও
মহাপুরুষ জন্মিয়াছিলেন কিনা ইতিহাস সাক্ষ্য দেয় না।

শ্রীদীনবন্ধু শর্মা বেদশাস্ত্রী
২২/৬/৭১

श्री पं० दीन बन्धु जी का हस्त-लेख

बंगला-हिन्दी में

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द सरस्वती यो विराट् ओ सतोमुखी प्रतिभालय्या, जन्म ग्रहण करिया छीलेन। ताहार उज्ज्वल जीवनी ताहारी प्रकाश मात्र। तीनी शुधु समाज संस्कारक ओ वैदिक पण्डित छीलेन न। तेनी छीलन जीवन भर विप्लवी संस्कारक, देश ओ धर्म-सेवक, राजनीतिज्ञ, ओ देशभक्त, साधक, परम योगी, ओ जीवन्मुक्त पुरुप; पृथिवी ते एमन कोनो महापुरुप जन्मिया छीलेन इ न। इतिहास साक्ष्य दैन।

ह० : श्री दीन बन्धु शास्त्री

२२-६-७१

हिन्दी में अनुवाद :

महर्षि दयानन्द ने जिस विराट् और सर्वतोमुखी प्रतिभा लेकर जन्म ग्रहण किया था, उनकी उज्ज्वल जीवनी उसी का प्रकाशमात्र है। वे जीवन भर क्रान्तिकारी, सुधारक, देश और धर्म के सेवक, राजनीतिज्ञ, देशभक्त, साधक, परम योगी और जीवन्मुक्त पुरुप थे। पृथ्वी में ऐसे किसी महापुरुप ने जन्म लिया कि नहीं, इतिहास इसकी साक्षी नहीं देता है।

परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री मद्दयानन्द सरस्वतीरर महोदयेर आत्म-चरित्र

(१)

आमार जन्म-स्थान व जन्म-काल : गुजरात (गुर्जर) प्रदेशे काठियावाडेर (सौराष्ट्र) अन्तर्गत मौर्वी राज्ये डेमी नदीर किनाराय अवस्थित एक नगरे सम्वत् १८८१ (सन् १८२४) औदीच्य ब्राह्मण कुले आमार जन्म हई। एई हिसावे आमी गुजराती ब्राह्मण सन्यासी आ अन्य हिसावे केवल एक भारतीय सन्यासी हई। ए खोन आमार वयस प्रायः ४८ वत्सर हुई।

योग विद्या शिक्षा

व्यास आश्रमे योग विद्या शिक्षा : शुकेश्वर तीर्थ नर्मदार दक्षिण तीरे अवस्थित, ओ ओहार उत्तर तीरे व्यास तीर्थ। ए खानि व्यास महोदयेर नामानुसारे व्यास आश्रम। नरमदार एक धारा आश्रमे दक्षिण दिके प्रवाहित। एई जन्य एई आश्रम दीपे परिणत होइया छे।

कराई जलपान। इहातेओ शरीर नीरोग थाके। त्राटक योग-उदयकालीन चन्द्र सूर्य प्रतिबिम्ब निजेर चक्षुर प्रति अन्य चक्षुर दृष्टीर प्रति पलक हीन ओ अविछिन्न दृष्टि राखाई त्राटक योग, इह द्वारा।

◆

वैराग्य लाभ :

आमार नार्य वत्सर वयसे आमेर पितामहेर मृत्युर होइया छीलो। शक लेई कान्दी ने छीलो आमी, कान्दी ते छालां। मृत्युर सम्बन्धे आमार कोई ज्ञान छीलो न। आमार वयस इयारवन अठारह वर्ष। आमार चौदह वर्षेर भग-नीर मृत्युर होइया छीलन। मृत्युर सम्बन्धे आमार अनुभव एइरवान होइते इ आरम्भ होइआ छील। आमार स्नेहोशीला भगिनीर मृत्यु ते हृदये खूब आघात लागिया छील। आमार कान्ता पाइ नाई। केवल एह।

अष्ट सिद्धिर परिचय

१. अनिमा-शरीर आ यतने वृहत होइबे न।
   हइले ओ संयमेर प्रयोगे परमाणु तुल्य हइबे।
२. लघिमा

◆

अथ नर्मदा तट भ्रमण, सन्न्यास ग्रहणांच

नर्मदा तटे आमि काशी हई ते रवाना हइया। पद व्रजे विन्ध्या चलेर दिके अग्रसर हइते थाकिलाम। विन्ध्याचल औ सतपुरा पर्वतेर मध्ये महाकाल नामे पर्वते आछे। ताहार शृंगेर एक विराट् कुण्ड हइते नर्मदा वहिर्गत होइछे। मध्य प्रदेश ओ

आ संचालक पाइले युद्ध करार जन्य सकले प्रस्तुना आछे। ख्रिस्टान राज्य आ इस्लाम राज्य हइते हिन्दु मुसलमान एक संगे युद्ध करार जन्ये प्रस्तुत हइ आ जाइबे। प्रयोजन आसिले प्राण परियन्त दीबे।

जयपुरेर अनुभव, पुष्कर हइते जयपुर

◆

विष्णु भगवानेर नामानुसारे कर्पण जी एई व्यापार लइया माता पितार मध्ये विरोधेर सृष्टि हइया छील। एइ दृश्य देखिया निमन्त्रित शत-शत व्यक्ति स्तम्भित हइया गइया छीलेन। आमार माता मह मीमांसा कइया दीलेन। पुत्रेर दुइ नीति नाम राखा हौक्। एक शिवेर नामानुसारे। द्वितीय विष्णु भगवानेर नामानुसारे। तदनुसारे बाबा ओ मां उभय स्वीकार करिया छीलेन।

मकले निजे के प्रभु शासक मनि करिया सकल के ई शासिकेर दृष्टि ते राखे।
नेटिव निगार काला कृष्णांग) इडियट, सूआर, अनाड़ी, स्पष्ट ई, फूल, डाग।

... और अधिकारी इनकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करता है। इन्होंने इस ... जीवनी में एक भी अक्षर अपनी ओर से नहीं मिलाया है। यह मैं मिलान कर देख चुका हूं। इस बत को उन दिनों कलकत्त में पधारे श्री ओउम् प्रकाश जी त्यागी महामन्त्री सार्वदेशिक सभा ने भी सब लेखों को देख कर स्वीकार किया। यह सम्मति सार्वदेशिक में छप भी चुकी है।

पण्डित दीन बन्धु जी ने ऋषि प्रयुक्त संस्कृत शब्दों को बंगला समझ कर उनका अनुवाद उर्दू में कर दिया था। मैंने ऋषि कथित उन्हीं संस्कृत शब्दों को जीवनी में अंकित कर दिया है। यत्र तत्र अनुवाद की सारगर्भित त्रुटियों का संशोधन कर हस्त लेखानुसार पाठ करा दिया। पाण्डु लिपि के पृष्ठों की संख्या भी दी गई है, जो ३७४ है। बंगला भाषा भी हिंदी में टिप्पणी में दे दी है।

शंकाओं के निवारणार्थ अनेक यात्रा ग्रन्थ,भूगोल और ऐतिहासिक ग्रन्थों को आद्योपान्त पढ़ा।

इस सारी छान बीन से निष्कर्ष यह निकलता है कि.—

१.—अज्ञात जीवनी सारी की सारी पुराने बंगला लेखकों की लिखी हैं। बहुत पुरानी है। कागजा भी पुराना है। शीर्ण-जीर्ण पृष्ठ भी हैं। दीमक के खाये भी हैं।

२. ३७४ पृष्ठ तक के हस्तलेखों का मुद्रित अंकों से संतुलन किया। अगले लेखों का उस समय मिलान न हो सका। 'सार्वदेशिक' के ६१वें लेख तक का मिलान कर सका।

ऋषिकेश से मानसरोवर शीर्षक वाले ६२ वें अंक को कोई महानुभाव ले गये थे। उपद्रवों के कारण वे न आ सके।

३. ऋषिवर के कलकत्ता-वास के समय एक बंगला भाषा की छोटी सी पुस्तक ऋषि को भेंट की गई थी। वह ऋषि के आगमन से पूर्व की प्रकाशित है। उसका कागज इन हस्तलेखों से भी नया लगता है। वह मेरे पास है।

४. कुछ पन्ने स्वामी जी के समक्ष लिखे लेखों के पश्चात् दूसरी बार लिखे गए प्रतीत होते हैं। कुछ खराब होने पर पुनः लिखे गए प्रतीत होते हैं, सभी बहुत पहले के हैं। एक-एक पृष्ट पर आरम्भ और मध्य में अलग-अलग पृष्ठांक हैं।

५. पं० दीनबन्धु जी की कोई कल्पना कहीं पर नहीं है।

६. दो स्थलों की दो २ प्रतियाँ भी हैं। लेख मिलता है।

७. हस्त लेख १०-१२ प्रकार से अधिक हैं। सब भिन्न-२ हैं।

लेखों के फोटो भी मैंने लिए हैं। पं० दीनबन्धु जी के लेख का भी फोटो लिया है। सब भिन्न हैं लेखाक्षर नहीं मिलते। लेख चित्रों में देखें में देखें।

८. कलकत्ता आर्यसमाज के सब ही व्यक्ति पं० दीन बन्धु जी की सच्चाई के कारण उनके प्रति सम्मान भाव रखते हैं।

९. श्री पं० उमकाँत जी तथा पं० सदाशिव जी आदि सब ही सार-हीन समालोचना और पं० दीनवन्धु जी का लेखों में अपमान करने से दु:खी हैं।

१०. पूना प्रवचन और थियासोफिस्ट जीवनी से इस जीवनी का कोई भेद नहीं है। अपितु अज्ञात जीवनी में उनमें आये स्थानों और घट-नाओं का विशद उल्लेख है। पृष्ठ—२७३ से ३२७ तक परिशष्ट ८ देखें

११. कोई भी स्थान अज्ञात जीवनी में ऐसा नहीं है, जिसका पुरा पता-ठिकाना मालूम न कर लिया गया हो। गुफा, नदो, नाले, घाट, मन्दिर, तीर्थ, वन, पर्वत, तालाब सब की ही पूरी जानकारी लिखित मौजूद है। परिशिष्ट १ से ७ में देखें पृष्ठ २५३ से २७१

१२. बड़ौदा से बनारस जाना, थियासोफिस्ट, पं० लेखराम, देवेन्द्र बाबू ने अपने २ ग्रन्थों में स्वीकार किया है। देखें—१२६ से१२८। बनारस के अध्ययन काल केगुरुओं के नाम तकभी देवेन्द्रबाबू के बंगला में प्रकाशित दूसरे संस्करण में मिलते हैं इसकी एक प्रति मुझे पं०दीनबन्धुजी से प्राप्त हो गई है अन्यत्र अप्राप्य है इसे कलकत्ता वासकाल में गोविन्दराम हासानन्द ने छापा था। जिसे कलकत्ता आर्यसमाज ने छापने से इंकार कर दिया था।

१३. ऋषि के पूना प्रवचन के १०वें व्याख्यान और १६वें व्याख्यान में उल्लिखित अलकापुरी,देहविघटन,काश्मीर,कैलाश यात्रापृ. ९७ पृ. १२६ १३२ के उल्लेख की अज्ञात जीवनी पुष्टि करती है।

१४. अलखनन्दा स्रोत की यात्रा में अब तक अज्ञात 'मग्नम्' बद्री-नाथ से १३४ मील पर कैलाश यात्रा के मध्य का पड़ाव है। देखो--पृ.१३० १३२ कैलाश के १३ यात्रा-मार्गों में से यही सबसे कठिन मार्ग है,इस मार्ग से यात्रा का वर्णन केवल एक अंग्रेज यात्री का ही और मिलता है यह सब विवरण १३वर्ष तक कैलाश मानसरोवर पर रहने वाले,स्वा प्रणवानन्द जी की'कैलाश मानसरोवर यात्रा' में मिलता है, जिसकी भूमिका पं० जवाहर लाल नेहरू ने लिखी थी। ऋषि के हिमालय के मार्गो एवं स्थानों की यात्रा वर्णन की पुष्टि गौरीशंकर शिखरारोही श्री रामराहुल जी ने की है। इसमें किंचिन्मात्र भी असत्य नहीं है।

१५. ऋषि की तिब्बत यात्रा का उल्लेख भी 'तिब्बत में तीन वर्ष' नामक पुस्तक में मिलता है जो (पुस्तक) जापानी यात्री 'श्री ईकाई का वागुची रचित है। देखो—१३८-१४०

१६. सन् ५७ में ऋषि दयानन्द ने केवल साधु-संघटन ही नहीं किया था अपितु अश्वारोही बनकर स्वयं भाग भी लिया था। ब्रह्मावती बिठूर के विनाश की घटना का प्रत्यक्ष अवलोकन न किया होता तो 'सत्यार्थ प्रकाश' में भी उल्लेख न होता। देखो—१०३-१४०

१७. नाना साहब, उनकी मुंह बोली बहिन लक्ष्मीबाई, माता गंगा बाई, छोटे भाई बाला साहब, मंत्री अजीमुल्लाखाँ और उनके लिपिक तांत्याटोपे, नाना के साथी वीर विक्रमसिंह, यह सारा परिवार कानपुर से कुम्भ मेले पर हरद्वार गया। इसमें सन्देह की कोई बात नहीं। क्योंकि नाना साहब ही अंग्रेजी पत्र के लेखानुसार दयानन्द के नाम से टंकारा मे ही छुपकर रहे थे। आर्यसमाज के मन्त्री के पत्रानुसार नाना साहब की टंकारा में छतरी बनी है। अपनी मृत्यु पर नाना साहब ने सोने और अशर फियों से भरी छड़ी अपने अन्तिम संस्कार के लिए दी थी। नाना के हाथ से बने चित्र भी वहाँ रखे हैं। नाना साहब यदि दयानन्द के शिष्य न होते तो जान को जोखम में डाल गुरुभूमि की धूलि में वास क्यों स्वीकार करते। देखो—११८-१२२

१८. चपातीं, कमल की प्रथा भी अत्यन्त प्राचीन है। इतिहासकार भी इसके उद्गम का पता न लगा सके। इनकी प्रयोग विधि का पूरा २ उल्लेख The Oxford History of India, By Vincent A Smith C.I.6 के ७१४ पृष्ठ पर है।

बाबू रामगोपाल घोष ने भी G.D. ६१२ P. के पते से उल्लेख किया है। पी- ३५-६६ में भी इसका उल्लेख है। ७२० पृष्ठ परगंगाबाई का लक्ष्मीबाई के साथ सम्बन्ध बताया है। '१८५७ का भारतीय स्वतन्त्र्य संग्राम' नामक जगत् प्रसिद्ध इतिहास में वीर सावरकर ने भी इन सब घटनाओं का वर्णन विस्तार से किया है। अन्य भी अनेक प्रमाण हैं। १२२-१२५

१६ बाल्य-जीवन, वैराग्य, योगाभ्यास आदि के ३८ लेख सबने ही निरापद माने हैं। खोज से सारी अज्ञात जीवनी ही निरापद हैं।

अज्ञात जीवनी की १९२५ से प्रतीक्षा

—श्री पं० दीन बन्धुजी शास्त्री बी.ए. आचार्य आर्य समाज, कलकत्ता अज्ञात जीवनी के पुराने हस्तलेखों की खोज में ४५ वर्ष से लगे रहे।

—१९२५ में मथुरा में श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर आर्य नेताओं से विचार-विमर्श हुआ। सब ही ने उत्साह प्रकट किया।

—१९२६ को टंकारा में श्रीमद् दयानन्द शताब्दी में आर्य नेताओं को अज्ञात जीवनी की क्रमिक उपलब्धि की सूचना दी गयी सबही से अपूर्व उत्साह मिला।

—सन् १९३३ में अजमेर में श्रीमद् दयानन्द अर्धशताब्दी उत्सव में खुले पण्डाल में अज्ञात जीवनी के अनुसन्धान के बारे में भाषण दिया। 'आर्य समाज के इतिहास' में पं इन्द्रजी ने इसका उल्लेख किया।

—श्री हेमचंद्र चक्रवर्ती की 'दिन पंजी' से 'महर्षि के बंगाल में चार महीने की दैनं दिनकर्म सूची' मिली। आर्य समाज कलकत्ता ने 'दयानंद प्रसंग" नाम से प्रकाशित किया।

—स्वामी स्वतंत्रदानन्द जी ने उसका हिंदी अनुवाद भी प्रकाशित किया। पं इंद्रजी विद्यावाचस्पति ने अपने 'आर्य समाज का इतिहास' में इस पर हर्ष प्रकट किया।

—श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर, पं० घासीरामजी एडवोकेट प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रांत, दीवान हर बिलासजी शारदा, महाशय रघुनंदन लालजी, पं० मिहिरचंदजी धीमान ने इस अज्ञात जीवनी के उद्धार में बहुत उत्साह दिया।

—इस अज्ञात जीवनी के प्रकाशित होने पर आर्य जगत् में अपार हर्ष है। ऋषि की जोखम भरी यात्राओं और योग का अपूर्व दिग्दर्शन या ऋषि भक्त तथा अन्य धन्य हो गये हैं। हृदय से पं० दीनबंधु के इस ४० वर्ष के अध्यवसाय की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। यदि सूर्य का प्रकाश उल्लूक को नहीं भाता तो उसकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिए।

पृष्ठ भूमि

सन् १९२३ में आर्यसमाज कलकत्ता के दीपावली उत्सव के सभापति पद से भाषण देते हुए श्री विपिनचन्द्र पाल (बंग-भंग आन्दोलन और स्वदेशी आन्दोलन के नेता, सुप्रसिद्ध राजनीतिक वक्ता और ब्राह्म-समाज के विशिष्ट पुरुष) ने घोषणा की थी—"महर्षि दयानन्द सरस्वती वर्तमान युग के अनन्य श्रेष्ठ महापुरुष थे। बहुत ही खेद की बात है कि उनकी अज्ञात जीवनी का उद्धार आज तक भी हुआ नहीं। यह उत्तर-दायित्व विशेष रूप से आर्यसमाज का है इसके लिये भगीरथ प्रयत्न होना चाहिए।"

श्रीरामानन्द चटर्जी एम० ए० ("Modern Review"), एवं "प्रवासी" पत्र के सम्पादक और साधारण ब्राह्मसमाज के आचार्य) ने कहा था—"महर्षि दयानन्द बंगाल में आकर पूरे चार महीने (१६ दिसम्बर १८७२ से १६ अप्रैल १८७३ तक) रहे। काशी-शास्त्रार्थ (१८६९) के **विजयी वीर** महर्षि दयानन्द के दर्शन के लिये बंगाल के सुप्रसिद्ध समाज-सुधारक, धर्म संस्कारक, साहित्यिक, कवि, दार्शनिक, वैज्ञानिक और चिन्तनशील मनीषी लोग उनके रहने के स्थान महाराजा यतीन्द्र मोहन ठाकुर के वराहनगरस्थ नाईवान नामक प्रमोद कानन में प्रतिदिन अधिक संख्या में आते जाते थे। विशिष्ट पुरुषों से उनका विचारविनिमय, वार्ता-लाप, आलोचना और शंका-समाधान भी होता था। बहुतों के साथ उनका प्रेम-प्रीति और सौहार्द भी पैदा हो गया था। उनकी मुख निःसृत और संस्कृत भाषा में कथित वाणियों को लिपि-बद्ध करने के लिये **महर्षि देवेन्द्र-नाथ ठाकुर**, पं० **ईश्वरचन्द्रविद्यासागर** और **ब्रह्मानन्द श्री केशवचन्द्रसेन** ने कुछ एक विद्वान् लेखकों की नियुक्ति की थी। वे सब संस्कृत में लिखित विवरण आज कहाँ ? 'दयानन्द-चरित" के लेखक श्री देवेन्द्रनाथ

मुखर्जी को इसका पता नहीं मिला था। आज अगर वह अमूल्य सम्पद् मिल जाय तो धर्म-जगत् के लिये बहुत ही उपकार होगा। आर्य-समाज कलकत्ता का इसके उद्धार के लिये पूर्ण प्रयत्न परम कर्त्तव्य है।"

पं० श्री रसिक मोहन विद्याभूषण (वैष्णव दार्शनिक और शताधिक वर्ष-जीवी पुरुष) ने कहा—"उस समय तक महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन के करीब ५० वर्षों की प्रधान-प्रधान घटनाओं को सुनाया था, केवल पिता का नाम और जन्म-स्थान का परिचय नहीं बताया। शर्त भी थी कि उनकी मृत्यु से पूर्व यह विवरण मुद्रित न होने पावे। सम्भवत: यह विवरण ब्राह्म समाज के नेताओं के पास ही रह गये और उनका ध्यान ही नहीं रहा।"

पं० श्यामलालजी गोस्वामी (बंगाल के सुप्रसिद्ध धर्मवक्ता) ने कहा—"उस समय से १० वर्ष बाद महर्षि दयानन्द की मृत्यु हुई थी। इन दस वर्षों के अन्दर ब्राह्मसमाजी आदि, नव विधान और साधारण इनतीन नामों में विभक्त होकर परस्पर प्रतियोगिता करते रहे और महर्षि दयानन्द जब राजकोट, बम्बई, पूना, लाहौर, अहमदाबाद आदि स्थानों में आर्यसमाज की स्थापना करने लगे तब वहाँ के प्रार्थना-समाजों (ब्राह्म समाज) के साथ आर्यसमाजों की प्रतिद्वन्द्विता शुरु हो गई थी। इस स्थिति में महर्षि दयानन्द की मृत्यु (१८८३) में हो गयो। उस लिपिबद्ध विवरण के प्रति ब्राह्मसमाज स्वाभाविक रूप से ही उदासीन हो गया था। श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी (बंगदर्शन पत्र के सम्पादक), श्रीनगेन्द्रनाथ चटर्जी (महात्मा दयानन्देर संक्षिप्त जीवनी" के लेखक) और श्री देवेन्द्र नाथ मुखर्जी ("दयानन्द चरित" के लेखक) को भी उस लिखित विवरण का पता नहीं मिला था। आर्य समाज और ब्राह्म समाज के अन्दर वैमनस्य भी इसके लिये एक कारण था। सन् १८७३ से आज १९२३ है—यह तो ५० वर्ष की बातें हैं। महर्षि दयानन्द की मृत्यु (१८८३) के बाद भी आज ४० वर्ष चले गये। वह लिखित विवरण मिल जाये तो अच्छा ही है। लेकिन भगवान् जानते हैं कैसे इसका उद्धार होगा।"

पं० शंकरनाथ (भवानीपुर कलकत्ता ब्राह्मसमाज के सभापति और कलकत्ता हाईकोर्टके विचारपति पं० शम्भुनाथ के सुपुत्र और आर्यसमाज कलकत्ता के सभापति) ने कहा—"आजकल ब्राह्मसमाज और आर्यसमाज के अन्दर कोई वैमनस्य नहीं है। बहुत पहले महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने आदि ब्राह्मसमाज और आर्यसमाज को एकत्र करने के लिये कोशिश भी की थी। श्री बलयेन्द्रनाथ ठाकुर को इन्होंने इस उद्देश्य से लाहौर आर्य-

समाज तक भेजा था। उनके प्रबल आग्रह से हमने आर्यसमाज के पं० अच्युत मिश्र को बोलपुर शान्ति निकेतन में दैनिक होम करने के लिए भेजा था। जब तक देवेन्द्रनाथ ठाकुर जीवित रहे तब तक वहाँ दैनिक होम चालू रहा। पंजाब के विशिष्ट आर्यसमाजी श्रीरामभजदत्त चौधरी के साथ महर्षि देवेन्द्रनाथ की दौहित्री श्रीमती सरलादेवी का विवाह हुआ था और उस विवाह का अनुष्ठान मेरे घर पर ही हुआ था। आजकल आर्यसमाज और ब्राह्मसमाज के अन्दर सामाजिक और व्यावहारिक वैमनस्य कुछ भी नहीं है। दोनों समाजों के विशिष्ट सदस्य लोग परस्पर दोनों के वार्षिक उत्सवों में शामिल होते हैं। महर्षि दयानन्द की अज्ञात जीवनी के उपादान जिनके हाथों में हों, वे अवश्य देने की कृपा करें।"

वर्तमान लेखक ने कहा—"दोनों समाजों में वेद की मान्यता के सम्बन्ध में वैषम्य अवश्य है। ब्राह्मसमाज के प्रवर्तक राजा राममोहनराय वेद को अभ्रान्त और अपौरुषेय नहीं मानते थे। आज भी आर्यसमाज के उत्सवकालीन यज्ञों में आदि ब्राह्मसमाज के आचार्य पं० श्री सुरेशचन्द्र सांख्य-वेदान्ततीर्थ, नवविधान ब्राह्मसमाज के आचार्य श्री द्विजदास दत्त (अध्यक्ष शिवपुर इन्जीनियरिंग कालेज और अलीपुर षड़यन्त्र मामले के आसामी श्री उल्लासकर दत्त के पिता) और साधारण ब्राह्मसमाज के आचार्य श्री अनाथकृष्ण शील सम्मिलित होते हैं। मैं भी ब्राह्मसमाज के आमन्त्रणानुसार चितपुर रोड के आदि ब्राह्मसमाज की वेहाला की और उल्टा डांगा साधारण ब्राह्मसमाज की वेदी से शास्त्र-पाठ करता हूं। अगर ब्राह्मसमाज वेद को अपौरुषेय और अभ्रांत मान लेता तो महर्षि दयानंद कभी आर्यसमाज नाम से कोई नयी धर्म-संस्था स्थापित नहीं करते। जो कुछ हो, अगर महर्षि की कथित आत्म-जीवनी, वार्तालाप, शंका समाधान और आलोचना-प्रसंगों की पांडुलिपि (Manuscript) विनष्ट न हो गई हो, तो उसका पुनरुद्धार हम लोग जरूर करेंगे।"

उस सभा में **थियोसोफिस्ट** (Theosophist) नेता श्री हीरेन्द्र नाथ दत्त वेदान्तरत्न एम. ए., पी. आर-एच, धर्मवक्ता पं० कुलदाप्रसाद मलिक आदि वक्ताओं ने अपने-अपने व्याख्यानों में हर्ष प्रकट किया था आर्यसमाज कलकत्ता के विशिष्ट पुरुष श्रीमान् सेठ दीपचन्द जी पोद्दार श्रीहरगोविन्द गुप्त, सेठ श्री छाजुरामजी चौधरी, श्री तुलसीदास जी दत्त और श्री बलाई चन्द जी मलिक (प्रथम भारतीय डिप्टी मैजिस्ट्रेट श्री रसिककृष्ण मलिक के

पुत्र और 'Hindu Patriot" पत्र के सम्पादक श्रीकृष्णदास पाल के भानजे, आदि व्यक्तियों ने इस जीवनी-उद्धार-कार्य के लिये योजना भी बनाई थी। कृष्ण कुमार मित्र ("संजीवनी" पत्र के सम्पादक, बंग-भंग आन्दोलन के नेता और योगिराज अरविन्द घोष के मौसे) ने कहा—"महर्षि दयानंद की अज्ञात जीवनी का उद्धार हो जाय तो मैं अपने पत्र 'संजीवनी" में उसको धारावाहिक प्रकाशित करूँगा।"

वर्तमान लेखक तब ही (सन् १९२३) से आजतक (४५ वर्ष) से इस कार्य में लगा हुआ है। आशाजनक फल भी मिलने लगे। इसके दो वर्ष बाद (सन् १९२५) मथुरा की श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर आर्य नेताओं से इस अज्ञात जीवनी के बारे में विचार-विमर्श किया था। सब ही ने उत्साह प्रकट किया था। सन् १९२६ में टंकारा में श्री मद्दयानंद शताब्दी उत्सव में आये हुए आर्य नेताओं को इन अनुसंधानकार्यों की सम्भाव्य सफलता के बारेमें सूचना दी थी सब से अपूर्व प्रोत्साहन मिला था। सन् १९३३ में अजमेर में श्रीमद्दयानंद-निर्वाण अर्ध शताब्दी उत्सव के चौथे दिन खुले पंडाल में महर्षि की अज्ञात जीवनी के अनुसंधान कार्यों की सफलता के बारे में भाषण दिया था। प्रो० इन्द्रजी विद्यावाचस्पति ने अपने 'आर्यसमाज का इतिहास" नामक ग्रन्थ में उस व्याख्यान के बारे में उल्लेख किया है। महर्षि दयानंद के भक्त श्री हेमचन्द्र चक्रवर्ती (आदि ब्राह्म समाज के उपाचार्य) की दिन पंजी से महर्षि के बंगाल में चार महीने की दैनन्दिन कर्म-सूची 'दयानंदप्रसंग" नाम से मिल गयी थी। आर्य समाज कलकत्ता ने महाशय श्री रघुनन्दनलालजी की प्रेरणा पर उस कर्म-सूची को 'दयानंद प्रसंग" नाम से ही प्रकाशित किया था। पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानंद जी महाराज ने "दयानंद-प्रसंग" का हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित किया था। प्रो० इन्द्रजी विद्यावाचस्पति ने अपने "आर्य समाज का इतिहास" ग्रन्थ में 'दयानंद-प्रसंग" का उल्लेख करके हर्ष प्रकट किया है। पं० भगवद्दत्तजी बी.ए. पं० घासीराम जी एडवोकेट और दीवान हरविलासजी शारदा से और कलकत्ता के महाशय रघुनंदन लाल जी और पं० मिहिरचंद जी धीमान से बहुत ही उत्साह मिला है।

आज तक भी इस विषय का अनुसंधान-कार्य बंद नहीं हुआ है। कलकत्ता से बाहर भी मुख्य-मुख्य जीवित जाग्रत ब्राह्मसमाजों के पुराने दफ्तर, कागजात, फाईलें, खाते, पत्र, नाम-पते जो मैंने महर्षि दयानंद के

बारे में खोज किये, उस समय के पुराने समाचार पत्रों की फाईलों से और जिस-जिस घर में महर्षि के उपदेश हुए थे, प्रवचन हुए थे या वार्तालाप हुए थे, वहाँ के अतिवृद्ध नर-नारियों के मुखों से ग्रहणीय बातें कुछ-न-कुछ श्रवण की गयी थीं। उन सब स्थानों के जनप्रवाद और कहानियाँ महर्षि के बारे में सुनीं। जहाँ-जहाँ महर्षि का आना-जाना होता था, वहाँ के लोग उनके ,भक्त, प्रशंसक, अनुयायी या विरोधी बन गये थे। सभी जगह उपादान-संग्रह के लिये गया था। कभी-कभी एक ही स्थान पर कुछ-न-कुछ मिलने की आशा से घण्टों दिन मास घूमना पड़ा। कभी आशा सफल हुई, कभी विफल भी हुई। किसी-किसी सज्जन ने मुझको 'दयानन्द का दीवाना" "या 'विकृत मस्तिष्क" का खिताब दिया था। मैंने प्रसन्नता से सब कुछ शिरोधार्य कर लिया।

महर्षि दयानन्द के बंगाल पधारने के समय से आज ९५वाँ वर्ष बीत रहा है। आज से २५वर्ष पहले भी बहुत वृद्ध पुरुष मिलते थे, जिन्होंने महर्षि के दर्शन किये थे। आज उन सबों का अभाव हो गया है। महर्षि के बारे में कागज के कुछ पुराने टुकड़े पुरानी बंग लिपि या संस्कृत लिपि में लिखे हुए ढूंढता था पर उनको भी बहुत आदमी पूर्वजों की धरोहर समझकर देना या दिखाना भी नहीं चाहते हैं। इस रूप में उपादान संग्रह करके महर्षि की अज्ञात जीवनी का प्रकाशित करना असम्भव ही मालूम पड़ा था। लेकिन भगवान् की कृपा से इस कार्य में आशा की किरण दीख पड़ी है। जो-जो पुरुष महर्षि की जीवनी की सारी बातें संस्कृत में कही हुई सुनकर लिखने के लिए नियुक्त हुए थे उन सबके बंगलिपि में बंग भाषा में लिखे हुए विवरण मिल गए हैं। भविष्य में और भी कुछ मिलने की आशा है। उन सब अंशों को क्रमानुसार रखकर लेखों का विन्यास किया गया है। जिन्होंने लिखा था उनके नाम, लिखने की तारीख और मेरे द्वारा उसकी प्रतिलिपि करने की तारीख और विवरण किस रूप से प्राप्त हुए हैं आदि उल्लेखनीय बातें दी जायेंगी।

अज्ञात जीवनी की सूचनाएँ

(१) पं० सत्यव्रत सामश्रमी के गृह से प्राप्त लिखित विवरण से महर्षि दयानन्द के बाल्य-जीवन की बहुत-सी घटनाएँ मिली हैं जो कि बहुत ही विस्मयकर और चित्ताकर्षक हैं। नमूने के रूप में एक घटना दी जाती है। उसमें लिखा है कि दयाराम (दयानन्द) को बहुमूल्य आभूषणों

के साथ चोर चुराकर ले गये थे। दो दिन के बाद लड़के के मिल जाने से लड़के के शरीर के भार के समान सोने चान्दी से तुलादान और देवताओं केपूजा-पाठ और ब्राह्मण-भोजन हुआ था, इत्यादि। इस अंश के लेखक थे श्री त्रैलोक्यनाथ भट्टाचार्य विद्याभूषण।

(२) ऐतिहासिक श्रीरमेशचन्द्र दत्त आई० सी० एस० के गृह से महर्षि दयानन्द के बाल्य-जीवन के वैराग्य की वर्णना प्राप्त हुई है। अपनी बहन और चाचा की मृत्यु से इहलोक और परलोक के बारे में शंका पैदा हो गई थी। उसमें उल्लेख है कि उनके घर में साधु-संन्यासी भिक्षुक आदि जो कोई आते थे उन सबसे दयाराम (दयानन्द) पूछते थे कि "मनुष्य-पशु-पक्षी मरकर कहाँ जाते हैं ?" मृत्यु के बाद की हालत जानने के लिए दयाराम कभी-कभी मरने के लिए भी तैयार हो जाते थे इत्यादि। इस अंश के लेखक थे श्रीनृत्यगोपाल चौधरी स्मृति रत्न।

(३) रिषिड़ा (हुगली) के पं० श्री सत्याचरण शास्त्री के गृह से जो विवरण मिला है उसमें है—दयाराम (दयानन्द) गृह से भागकर चार वर्ष तक योगी-साधु-संन्यासी-तपस्वियों की खोज में नाना स्थान घूमे थे। उस समय उनको देवता के सम्मुख बलिदान देने के लिए तांत्रिक साधु पकड़ कर ले गये थे। शिकारी लोगों के शिकार के लिए वहाँ आ जाने से उनके जीवन की रक्षा हो गई थी इत्यादि। इस अंश के लेखक थे श्री नवीन चन्द्र अधिकारी व्याकरण-शास्त्री।

(४) साधारण ब्राह्मसमाज के आचार्य श्री अनाथकृष्ण शील के गृह से जो विवरण मिला है उससे जाना जाता है कि दयाराम (दयानन्द) ने साधु-संन्यासी-तपस्वियों के अन्दर संगठन के लिए प्रयत्न किया था। देश की बुरी हालत मिटाने के लिए साधुओं को तैयार करने का प्रयत्न किया था। उन्होंने सिपाही विद्रोह (Sepoy mutiny) आन्दोलन के साथ भी सम्पर्क स्थापित किया था मराठी नेता नाना साहब भी महर्षि दयानन्द से विचार-विमर्श करने के लिए आये थे, इत्यादि। इस अंश के लेखक थे—श्री अवन्ती कांत चक्रवर्ती न्यायरत्न।

(५) श्री महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के प्रपौत्र श्री क्षेमेन्द्रनाथ ठाकुर के गृह से विवरण मिलता है कि दयानन्द ने ५ वर्ष तक अवधूत के रूप में गंगोत्तरी से गंगासागर (बंगाल), गंगोत्तरी से

सेतुबंध रामेश्वर लंका और सेतुबंध रामेश्वर से देश के नाना स्थानों में भ्रमण किया। प्रधान-प्रधान सैन्यावासों में भी आया-जाया करते थे। वैराकपुर सैन्यावास (बंगाल) में भी आये थे। मंगल पांडे नामक सैनिक ने उनसे आशीर्वाद माँगा था। दयानन्द इसके बाद मथुरा में स्वामी विरजानन्द के पास वेदादि ग्रन्थ पढ़ने के लिए आए थे, इत्यादि। इस अंश के लेखक थे —श्री शिवचन्द्र राय विद्यार्णव।

(६) श्री वलाई चंद जी मल्लिक के गृह से जो विवरण मिला है उससे मालूम हो जाता है कि दयानन्द गुरु विरजानन्द से आशीर्वाद लेकर वेद प्रचारार्थ देश-भ्रमण से पहले साधना में निमग्न हुए थे। इस साधना की वर्णना इस विवरण में मिलती है, इत्यादि। इस अंश के लेखक थे—श्री नलिनी कान्त भट्टाचार्य विद्याविनोद।

(७) उल्टा डांगा साधारण ब्राह्मसमाज के आचार्य अध्यापक श्री हृदय कृष्ण दे एम०ए० के गृह से जो विवरण मिला है उससे जाना जाता है कि महर्षि दयानन्द वेद विद्यालय की स्थापना के लिए भारत के नाना स्थानों में भ्रमण कर रहे हैं इत्यादि। इस अंश के लेखक थे —श्री मधुसूदन आचार्य वाचस्पति।

(८) वेहाला आदि ब्राह्मसमाज के आचार्य श्री बेचाराम चटर्जी के वंशधर श्री हेमेन्द्र नाथ चटर्जी के गृह से जो विवरण मिला है उससे काशी शास्त्रार्थ का पूरा विवरण मिल जाता है, इत्यादि। इस अंश के लेखक थे श्री प्रफुल्लचंद्र मुखर्जी तकलंकार।

(९) वराहनगरवासी आचार्य श्री शशिपद बनर्जी के दौहित्र, अध्यापक श्री देवव्रत चक्रवर्ती के गृह से जो विस्तृत विवरण मिला है उसके लेखक स्वयं श्री शशिपद बनर्जी थे। उसमें महर्षि दयानन्द के रहने के स्थान वराह नगर (कलकत्ता) के नाईवान प्रमोद कानन में कलकत्ता के प्रधान-प्रधान व्यक्ति और महर्षि दयानन्द के साथ जो कुछ वार्तालाप, शंका समाधान हुए थे, सब कुछ लिपिबद्ध हैं, इत्यादि।

(१०) आदि ब्राह्मसमाज के आचार्य श्री सुरेशचंद्र सांख्य-वेदांत तीर्थ के गृह से जो विवरण का अंश मिला है उसमें महर्षि दयानंद और पं० ताराचरण तर्करत्न से हुगली में जो शास्त्रार्थ हुआ था उसका पूरा विवरण है इत्यादि। इस अंश के लेखक थे—श्री सतीशचंद्र सान्याल विद्यालंकार। श्री हेमचन्द्र चक्रवर्ती, ऋषि के योग शिष्य से प्राप्त किया।

(११) आदि ब्राह्मसमाज के आचार्य श्री क्षितीन्द्रनाथ ठाकुर के गृह से जो विवरण का अंश मिला है उसमें महर्षि दयानन्द प्रदत्त योग-साधन विषयक उपदेश है। वह विवरण आदि ब्राह्मसमाज के उपाचार्य श्री हेमचंद्र चक्रवर्ती का लिखा हुआ है। हेमचंद्र महर्षि से योग विद्या सीखते थे। हेमचंद्र अधिकांश समय महर्षि के साथ-साथ ही रहते थे। यह आपने स्वयं लिखा है।

(१२) साधारण ब्राह्मसमाज के आचार्य पं० श्री सीतानाथ तत्व-भूषण के गृह से जो विवरण का अंश मिलता है उससे जाना जाता है कि महर्षि दयानन्द प्रत्यक्ष रूप से कभी किसी स्त्री को उपदेश नहीं देते थे। एक दिन वराहनगर में आचार्य शशिपद बनर्जी के आश्रम में महर्षि दयानन्द के उपदेश का प्रबन्ध हुआ था। उपदेश शुरू होने के बाद उस स्थान पर अगल-बगल गाँवों की स्त्रियाँ धीरे-धीरे शताधिक हो गई थीं। महर्षि के उपदेश के बाद सब स्त्रियों ने एकत्र होकर उनको प्रणाम करना शुरु कर दिया। महर्षि ने मना किया किन्तु किसी ने भी नहीं सुना। महर्षि निरुपाय होकर आँखें बन्द करके प्रार्थना करने लगे। फिर स्त्रियों के शान्त होके बैठ जाने पर महर्षि ने स्त्रियों के लिए विशेष धर्म पर भाषण दिया था। इस उपदेश के लेखक थे—श्री धरणीधर मैत्र विद्यारत्न।

अब तक उपरिलिखित भिन्न-भिन्न स्थानों से प्राप्त महर्षि दयानन्द के मुख से निःसृत आत्म-जीवनी के आभास मिल पाए हैं उन सबको धारा-वाहिक रूप से हिन्दी में अनुवाद किया गया है। बाल्य-जीवन, वैराग्य गृह-त्याग, साधुसंग, देशभ्रमण, वेदविद्यालय, प्रचार, वेदविद्यालय-स्थापन, शास्त्रार्थ, शंका-समाधान आदि नामों से महर्षि की अपनी जीवनी के बारे में अपने मुख से निःसृत वाणियाँ रखी गयी हैं जो कि क्रमानुसार, यहाँ प्रकाशित की जा रही हैं।

—दीनबन्धु वेदशास्त्री

आचार्य आर्यसमाज, कलकत्ता